मुक्ति-बोध

प्रकाशक
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

जैनेन्द्र कुमार

ईश-बोध

प्रकाशक : पूर्वोदय प्रकाशन
८ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली ६
प्रथम संस्करण : १९६५
मूल्य : चार रुपये पचास पैसे
मुद्रक राष्ट्र भारती प्रेस, दिल्ली-६

भगती को

यह रचना आकाशवाणी के निमित्त से बनी है। हर रविवार एक परिच्छेद लिखा जाता और सोमवार को प्रसारित किया जाता। यह क्रम दस पर्व चला। इस क्रम और उस माध्यम की मर्यादा का प्रभाव कृति पर यदि कम दीखे तो विस्मय की बात नहीं है। तात्कालिक राजनीति का स्पर्श करते प्रतीत होनेवाले प्रसंग या शब्द या नाम वहां हटा बचा कर जाने दिये गए थे। यह पुस्तक में मूल रूप ही अपनाया जा रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि तात्कालीन राजकारण के संबंध का कोई मानस लेखक अथवा कृति का इष्ट नहीं है।

— जैनेन्द्र कुमार
[illegible]

यह रचना आकाशवाणी के निमित्त से बनी है। हर रविवार एक परिच्छेद लिखा जाता और सोमवार को प्रसारित किया जाता। यह क्रम कुछ हफ्तों चला। इस क्रम और उस माध्यम की मर्यादा का प्रभाव कृति पर यत्र तत्र दीखे तो विस्मय की बात नहीं है। तात्कालिक राजनीति का स्पर्श करते प्रतीत होनेवाले प्रसंग, प्रासंगिक या नाम वगैरह कहीं-कहीं बदल जाने दिये गए हैं। पर पुस्तक में मूल रूप ही अपनाया जा रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि तत्कालीन राजकारण से संबंध का कोई मतलब लेखक अथवा कृति का स्पष्ट नहीं है।

— जैनेन्द्र कुमार
७/३/६४

एक

इधर कुछ दिनों से ठीक नींद नहीं आती है। रात तीसरे पहर टूट जाती है और मन भटकने लगता है। सहसा कोई विश्वास नहीं करेगा। कारण मेरे नाम के साथ दुविधा की संगति कोई जोड़ नहीं पाता है। पर इस पचपन बरस की वय में स्वीकार करना चाहिए कि मुझमें दुविधा उग रही है। मेरे जैसे के लिए सोचना और लिखना जरूरी हुआ जा रहा है!

रोज की तरह मैं चुपचाप उठा और बाहर आ गया। चांद इस किनारे आने लगा था। चांदनी थी और हल्की सुहावनी सर्दी। पन्द्रह-बीस मिनट छत पर घूमता रहा हुआ। पर मन एकत्र हो पाया हो सो नहीं। रोज तो लौटकर फिर बिस्तर में हो आया करता था लेकिन आज यहाँ बराबर के कमरे में मेज पर आ बैठा हूं और लिखना चाहता हूं। यानी पकड़ लेना चाहता हूं कि बात है तो क्या है।

आदत नहीं है लिखने की या सोचने की। कर डालने वाला आदमी समझा जाता हूं। सचमुच मानता भी रहा हूं कि सोचना बचना है। बाहर चुनौती है, बचकर अन्दर रमना भरमना ही सोच में गिरना है। इस तरह यद्यपि स्टडी रूम मेरे यहां भी है और वहां किताबों की अलमारियां भी मिल जायेंगी लेकिन स्टडी नहीं मेरा काम एडमिनिस्ट्रेशन रहा है। लगता रहा है कि समस्या अन्दर की नहीं है सदा वह बाहर है। कभी वह सोचने की नहीं हमेशा करने की है। और विचार

एक

इधर कुछ दिनों से ठीक नींद नहीं आती है। रात तीसरे पहर टूट जाती है और मन भटकने लगता है। सहसा कोई विश्वास नहीं करेगा। कारण, मेरे नाम के साथ दुविधा की संगति कोई जोड़ नहीं पाता है। पर इस पचपन बरस की वय में स्वीकार करना चाहिए कि मुझमें दुविधा उग रही है। मेरे जैसे के लिए सोचना और लिखना जरूरी हुआ जा रहा है।

रोज की तरह मैं चुपचाप उठा और बाहर आ गया। चांद इस किनारे आने लगा था। चांदनी थी और हल्की सुहावनी सर्दी। पन्द्रह बीस मिनट छत पर घूमता रहा हुआ। पर मन एकत्र हो पाया हो सो नहीं। रोज तो लौटकर फिर बिस्तर में हो जाया करता था लेकिन आज यहां बराबर के कमरे में मेज़ पर आ बैठा हूं और लिखना चाहता हूं। यानी पकड़ लेना चाहता हूं कि बात है तो क्या है।

आदत नहीं है लिखने की या सोचने की। कर डालने वाला आदमी समझा जाता हूं। सचमुच मानता भी रहा हूं कि सोचना बचना है। बाहर चुनौती है, बचकर अन्दर रमना मरमना ही सोच में गिरना है। इस तरह यद्यपि स्टडी रूम मेरे यहां भी है और वहां किताबों की अलमारियां भी मिल जायेंगी लेकिन स्टडी नहीं मेरा काम एडमिनिस्ट्रेशन रहा है। लगता रहा है कि समस्या अन्दर की नहीं है सदा वह बाहर है। कभी वह सोचने की नहीं हमेशा करने की है। और विचार

से वास्ता खाली आदमी का होता है असली आदमी बाहर इन्सान से चिपटता है।

अभी सुनो—सुनते हो ?

सुनने में कुछ देर हुई होगी। कुर्सी पीछे की ओर मोड़ी तो वहां श्रीमती थीं। कुछ व्यग्र और चिन्तित। मैंने ऐसे देखा कि कहो। वह बोलीं— 'क्यों जी यह क्या है ! —क्या बात है ?"

मुझे इस मुख पर की चिन्ता एकदम बुरी नहीं लगी। सचमुच इधर पत्नीत्व की संस्था में मुझे अर्थ प्रतीत होने लगा है। पत्नी बच्चों की माता हो सकती है पर उमर आने पर उसकी गहरी वत्सलता पति को ही प्राप्त होती है। अर्थात् विवाह का सार वय की नवीनता में नहीं मिला अब अधिकता में मिल रहा है। यह प्रिय तो हुआ, पर फिर भी जाने क्यों मुझ में रोष हो आया।

कहा 'क्यों कुछ तो नहीं।"

"कहते हो बात कुछ नहीं है। समझते होगे कि रात अंधेरे को बाहर छत पर जाकर तुम चार रोज से देर-देर तक घूमते रहा करते हो सो उसका मुझे कुछ पता नहीं रहता है। रोज़ और बिस्तर में आ तो जाते थे। आज यह बत्ती जलाकर यहां आ बैठे हो। अभी साढ़े तीन भी नहीं बजा होगा। मैं कहती हूं कि अब लड़के के बारे में सोच करने से क्या होगा। उसका भी तो कुछ अपना भाग्य है, भोगेगा। तुम अब उस बारे में कुछ कर नहीं सकते तो नहीं कर सकते। तुम उसको लेकर अब तक हलकान हुए जाओगे। मेरे पास क्या मां का हिर्दै नहीं है। पर सोचे जाने से तो कुछ नहीं बनता है।

'यह सब नहीं है भई—तुम जाओ सोओ।

और तुम ?

मैं कुछ लिखूंगा।'

"इस साढ़े तीन बजे उठकर लिखने को ऐसा क्या हो गया है यही तो मैं पूछती हूं। इधर तुम भूख से बाहर हुए जा रहे हो।"

मैं कुछ कहने की सोचूं कि वह बढ़कर पास आई, मेरे कंधे पर हाथ रखा फिर गोद में से उठा कर मेरा एक हाथ अपने दोनों हाथों में दाब लिया पूछा—

"सच बताओ क्या बात है ?

मैं उस समय कुछ भी कर सकता था। धक्का देकर उस पूछने वाली को बाहर निकाल सकता था। उचित शायद वही होता। लेकिन मैं उस समय कुर्सी से उठा अपने दाहिने हाथ को मुक्त किया और उससे पत्नी के बाएं गाल पर धीमे-धीमे टहोके देते हुए कहा—

"कुछ नहीं तुम जाकर सोओ—कैसी अच्छी हो !

पत्नी ने ठुनक कर कहा—' कैसी बेकार हूं—यही न कहना चाहते हो ! अच्छी बात है तो मैं चली जाऊं ?

"हां मैं ज़रा खुद अपने से सुलझना चाहता था।

पत्नी उत्तर में अनबूझ सी खड़ी रह गई। उस समय लगा कि मैं एकदम इस किनारे हूं बीच में लिपट रिक्तता है और कोई कुछ नहीं कर सकता है। यह बीच का अलगपन उठाए न उठ रहा था। तभी पत्नी ने प्रयासपूर्वक कहा—"सुनो पहले तुम मुझसे पूछ लिया करते थे। अब तुमने मिनिस्ट्री का इंकार किया तो कहा तक नहीं !

"तुम्हें किसने कहा ?

"बात झूठ है ?

"हां झूठ ही समझो। स्वीकार हो सके उसी का इन्कार मतलब रखता है। मेरा मन तुम जानती हो उचट गया है। मिनिस्ट्री क्या किसी कुछ के लिए वहां जगह नहीं है। तुम उसमें क्या करतीं ?

"यही तुमसे पूछने आई हूं कि मैं अब तुम्हारे लिए किसी तरह का कुछ भी करने लायक नहीं रह गई हूं न। ठीक है—तो मैं जाती हूं।

कहकर वह ठहरी नहीं चली गई और मालूम हुआ कि मैंने ही उन्हें हटा दिया है।

लोपा छोड़िये और मैं फिर निश्चित कुर्सी पर हो बैठा। पर नहीं

मुझसे नहीं बन सका। कुछ लिखा ही नहीं गया। एकदम समझ में नहीं आता है कि मेरे साथ यह क्या बीत रहा है। यह जो कामराज ने किया ठीक ही था। ऊँचे लोग राज-पद पर जाकर बैठें तो निम्न पद वाले क्यों न नीचे समझे जाने लगेंगे। इसलिये मुनासिब था कि कुछ ऊँचे नेता वापस जनता के बीच आएं और मामूली बन जाएं। कांग्रेस ने इसे माना और आशा की कि ऐसे उसकी साख और शक्ति बढ़ेगी। क्या मैंने भी कांग्रेस की भाषा में सोचा था साख और शक्ति बढ़ाने की भाषा में? यह भी गहरी दुविधा मेरे मन में है और मैं मानना चाहता हूं कि ऐसा नहीं है। पर सहारा नहीं मिल रहा है और जहां से प्रेरणा आती है प्राणों के उस स्तर पर सब गड़बड़ हो गया लगता है। मैं कुछ लिख नहीं सका। कुर्सी को छोड़कर खिड़की के बाहर चुपचाप आंख खोले बैठा रहा। जैसे उस शून्यता में से सत्य झलकेगा। अन्दर तो कोलाहल है कुछ सुन नहीं मिलता। पर समय बीतता रहा प्रभात छिटकने को आ गया और मैं अनुपलब्ध बना रहा। तभी मालूम हुआ कि मैं वापस बिस्तर में पहुंच सकता हूं और दूरी लांघकर निकट हो सकता हूं। क्या यही उपलब्धि होगी।

बिस्तर पर पहुंचकर कहा—

"सुनो सो गई?"

'नहीं तो—

"अरे तुम तो नाराज हो गई!

'क्या पर तुमी मैं नाराज होके किसी का?

"देखो फिर नहीं। अच्छा अब मुझे आधा अंग आराम से सुला दो। सुलती हो पीछे फिर नाराज हो लेना।"

असहाय शिशु से बने पति से अधिक पत्नी को और क्या चाहिये? और ऐसे क्षण पति मानों पत्नी के लिए सर्वस्व हो उठता है।

मेरे कार्य का क्रम एकदम भंग हो चुका है। कार्य जितना था पर निर्भर था। देश के लिए, समाज के लिए, दूसरों के लिए यह करता था

वह करता था। लेकिन अब वह भावना मन में से मिटती जा रही है। कारण वार्धक्य हो सकता है या जो भी कहो। इसलिए एकाएक मैं अपने में रीता-रीता सा लगने लगा हूं। मंत्रित्व एक काम था जो आत्यंतिक बन गया था। अब सोचने को जी होता है कि क्या वह काम भी था। लेकिन फुरसत बिल्कुल नहीं छोड़ता था। यद्यपि मन में निश्चय बढ़ता जा रहा है कि मंत्रित्व काम नहीं होता है तो भी उसके बिना तो इधर मैं और भी अपने को बेकार लग रहा हूं। तब व्यर्थ ही सही एक व्यस्तता तो थी। अब सार्थकता की तलाश में एकदम शून्य हुआ बैठा हूं!

घर में बेटी आई हुई है मंजु। जमाई भी साथ हैं। वह ऊंचे कारो-बार में रहा करते हैं। स्वयं तो वे नहीं मंजु आकर बोली—

'बाबूजी यह क्या बात है। आप हमारे लिये कुछ कर नहीं सकते तो बाधा तो न बनिए।

इस तरह की कठोर बात अपनी बेटी से सुनकर मैं उसकी तरफ देखता रह गया। कहा, "मंजो यह क्या कह रही है तू!"

"आपने मिनिस्ट्री से इंकार क्यों किया?'

"यह कौन इस तरह की बातें बकता फिरता है?"

"मां कह रही थीं।'

"उसे तो ख्वाब आया करते हैं। और हिन्दुस्तान में चालीस करोड़ सब मिनिस्ट्री के सहारे रहेंगे क्यों?"

मंजु की हिम्मत देखिये कि बोली—

"आप तो जो करना था कर चुके। हमारी सारी उमर पड़ी है। उसका रास्ता क्यों रोकते हैं। आपका मन भर चुका होगा, पर हमें तो अभी सब कुछ पाना है। आप क्या सिर्फ अपने लिए रहेंगे कि कुछ पायें तो चाहे लें चाहे फेंक दें। हमारी भी उस सब में राय है कि नहीं? वह मत की बात बाहर ही नहीं घर में भी चलनी चाहिए। आपने मां से पूछा? बेटी से पूछा? सबसे पूछा?"

क्षोभ की बात ही थी। मैंने कहा—"बको मत मंजु, और अपना काम

देखो। आइन्दा ऐसी फिजूल की बकवास न हो मेरे साथ, समझीं?

लेकिन मंजु मस्त न हुई, बोली—"नहीं बाबूजी, आप अब तक अपनी चलाते रहे। मां पिसती रहीं और हम जो बन सकते थे नहीं बन सके। सिर्फ इसलिए कि आपने अपने को माना, हमको साथ नहीं माना।"

"बात की हद होती है मंजु!" मैंने तेज होकर कहा, "और तुम अगर नहीं जाती हो तो मैं ही चला जाता हूं और मैं यह बरदाश्त नहीं करूंगा।"

तैश में तभी सीधे जाकर पत्नी से कहा, "तुम मुझे इस घर में रहने दोगी कि नहीं, ठीक बताओ।"

पत्नी अन्दर सीने की मशीन सामने लिए बैठी थी। बड़े समाहित भाव से बोली—

"क्या बात है? पहले बैठो तो—"

उनके इस व्यवस्थित भाव पर मैं और गर्म हो आया, बोला—

"यह मंजी मंजी की बात सारे में उड़ा रखी है और बेटी-जमाई को लेकर पेशबन्दी करना चाहती हो! शरम आनी चाहिए तुम्हें।"

पत्नी सुनकर मुस्कराई, बोली, "शरम की क्या बात है। सारे कुनबे को साथ चलना है कि नहीं। उनको बुलाना हो तो वैसा कहो। नहीं तो...।"

"अरे यह कुनबा है कि जिसे सर आंख बना लिया है। ऐसे वहम सब सिर से उतार दो। पुराने दिन भूल गई कि कैसी हालत थी। मेरी तरफ से तब समझो कि फिर हमें लौटकर उन्हीं दिनों पर पहुंचना है।"

"क्या!"

"यह सब जो है—अपना नहीं था, अपना नहीं है। बेटे-बेटी दुनिया में अपनी तरह से जियेंगे। जमाई लोग अपने बूते बढ़ेंगे। मैं सीढ़ी नहीं हूं कि पैर रखकर मुझ पर चढ़ा जाय। कुछ तो सोचो। चौवन बरस की उमर हो गई है, क्या अब भी मुझे भगवान का सुमरन नहीं करने दोगी?"

"भगवान! तुम भगवान को मानते हो?"

"नहीं, नहीं मानता था, नहीं मानता हूं। लेकिन इस दुनिया को ही

कब तक माने जाऊंगा ? नहीं रानी यह मानने लायक नहीं है। उसी के नाते हम एक-दूसरे से प्यार खींच लेते हैं एक दूसरे को जानने लग जाते हैं। प्यार गया तो हमारे पास कुछ नहीं रह जायेगा रानी। बाकी सब थोथा है, बिरथा है, जाल है। इस उमर में आकर हम-तुम यह नहीं समझेंगे माया की ममता में पड़े रहेंगे तो सोचो हमारी क्या गति होगी!'

रानी देखती की देखती रह गई। मैं भी नहीं समझ सका कि एकाएक ये शब्द मेरे मुंह में कहां से आ गये। मेरी प्रकृति के वे तनिक अनुकूल न थे। मेरे सारे इतिहास के विरुद्ध थे। इसी से रानी, अविश्वस्त पर प्रसन्न मेरी ओर विस्मित सी देखती रह गई।

विस्मय से उबर कर बोली—"क्या सच कहते हो ?

"क्या मतलब तुम्हारा कि सच कहता हूं ?

उसने फिर मुझे देखा। ऐसे कि मानो नाप रही हो। बोली, "सच कहते हो कि तुम में हार नहीं आई है उत्थ-थकान नहीं आ रही है? यह सब विराग तुममें निराशा में से पैदा नहीं हुआ है ? मैं तुम्हें हारता हुआ किसी तरह नहीं देख सकती हूं। दुनियां बेकार है, लेकिन उससे हारना कैसे हो सकता है ?

यह मैं क्या सुन रहा था ? मैंने कहा— तुम मुझे इतना ही जानती हो रानी ?"

रानी ने मुझे देखा। वह निगाह मुझे मानो भीतर तक टटोल गई। बोली—"यही तो कहती हूं कि मैंने अब तक तुम्हारे मुंह से पीछे हटने की बात नहीं सुनी थी। फिर उन बातों का विश्वास मैं करूं भी तो कैसे। तुम तो जीतने के लिए बने हो। मैंने देखा है और तुम भी ऐसा ही कहते आये हो। तब त्याग-विराग की बातें हम-औरतों जैसी मुझे न समझीं तो क्या समझीं। तुम्हारे लायक तो वह नहीं है न।

मैंने पत्नी की तरफ देखा। उसने जीवन भर साथ दिया था और मेरी अनुमता समझ कर मैंने कभी उसे ध्यान में नहीं लिया था। एका एक मुझे लगा कि जाने मैं किस बेमानता में रहता आया था। माँका

भावुक होने पर केलि-विनोद में जरा उसको बहलाकर लिया करता था, नहीं तो घर-गिरस्ती के सामान-असबाब से ज्यादा किसी तरह नहीं मानता था। मेरा वह मान टूटा और मुझे जाने कैसी एक कृतार्थता का अनुभव हुआ। कहा— 'अब तुम उस बात को सच मान सकती हो राजी।"

तुम कहोगे तो सच क्यों न होगी। मेरे साथ तुम्हें झूठ की तो कभी जरूरत नहीं हुई। पति प्रेम में कायर हो जाया करते हैं और पत्नी से चोरी रखते हैं। तुम को कभी उस तक की जरूरत नहीं हुई है। उस पर मैं मन में कितनी भी खिजती होऊं, तुम्हारी बहादुरी का सदा मुझे अभिमान रहा है। तो कहते हो तुम—वह सच है ?

"हां सच है।

राजी ने उत्तर में मुझे कुछ नहीं कहा। मुझे देखा तक नहीं। दोनों बाहें उठाकर उसने आकाश की दिशा में हाथ जोड़े और गद्गद भाव से बोली "हे भगवान अंत में तुमने मेरी प्रार्थना सुन ली।" वे हाथ फिर उसके अपने मुख पर आये थोड़ी देर उनसे वह अपना मुंह छिपाये रही। *फिर उसको असमंजस नहीं रह गया और साड़ी के छोर से खुल कर आंखों* से आई कम्पता के आंसू उसने पोंछे और कहा "तुमने मुझ को कभी गिनती में नहीं लिया है तो मत समझना कि ठीक नहीं किया है या तो अविश्वास में किया है। विश्वास रखना राजी तुम्हारी है और परम पत्नी कभी अपना से गिनती के लिए नहीं हुआ करती है। उसका सब भरम पति के साथ होता है।

यह सब क्या हो रहा था। मेरे लिये वह अनोखा अनुभव था। मैं व्यक्तित्व चाहता हूं, प्रत्येक में अपना व्यक्तित्व। कोई सम्बन्ध नहीं जिसमें व्यक्तित्व की हानि का समर्थन हो सके। लेकिन वह सब तत्व दर्शन जाने मेरे भीतर कहां निमग्न रह गया था। मुझे विस्मय हुआ जब देखा कि मेरा मन भरा आ रहा है। हर भावुकता को मैं कमजोरी समझता हूं। कमजोरी वह चरित्र की है व्यक्तित्व की है। विघात

निर्मम होता है विधाता भी निर्मम होता है। उनके तले हम सबको भी ममताहीन और दृढ़ होकर चलना है। व्यक्तित्व को किसी हालत में कीमत में नहीं दिया जा सकता। लेकिन यह सारा तर्कनिष्ठ भाव किसी तरह भी मेरे भीतर स्थिर नहीं रह सका। और मैं प्रसन्न रह गया यह अनुभव करके कि पत्नी ने स्वयं में निस्त्व बन कर मेरे स्व को ऐसा पराजित कर दिया है कि मैं कृतज्ञता में भीग उठा हूं।

इस सद्भव भाव को लेकिन मैं किसी पर प्रकट तो नहीं कर सकता था। इसलिए चुपचाप उस उपस्थिति से बाहर एकान्त में मैं अपनी आराम कुर्सी पर आ रहा। पहली बार अनुभूति मिली कि दुविधा कट रही है और अनायास एक समाधान-सा भीतर से आता आ रहा है।

पर मैं शंका उठाना चाहता हूं। अपनी पराजय को अस्वीकार करने के लिए जानबूझ कर प्रश्न उठाना चाहता हूं। नहीं यह नहीं होगा कि निर्वाण पुरुष की कृतार्थता अन्त में अधर्म में मानी जाय।

नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए।

दो

काफी जिन्दगी मैं चल आया हूं। क्या चाहता था मैं कि अब यह जिन्दगी खुली? यूनिवर्सिटी से निकला और देश के काम में पड़ गया। देश को आज़ाद होना था लेकिन तब यह था अब देखता हूं कि मुझे आज़ाद होना था। घर गिरिस्ती की जिन्दगी क्यों कैसी होती है। आज़ादी के आन्दोलन में पड़कर लगा कि मैं क्या नहीं हूं खोल रहा हूं और खुल रहा हूं। वहां से क्या-कैसे मोड़ खाता हुआ मेरा जीवन अब यहां तक आया है इसकी बात आगे हो सकेगी। लेकिन क्या अब भी अनुभव हो सका है मुझे उसका कि जिसे मुक्ति कहते हैं? मैं जानना चाहता हूं कि मुक्ति का वह बोध क्या है? वह पारिस्थितिक है? या नहीं आत्मिक है? या ?

सवेरे ठाकुर साहब आ गये। ठाकुर महावीरसिंह, जो अपने इलाके के हैं और असेम्बली के सदस्य हैं। उन्हें शिकायत थी कि ऐसे नहीं चलेगा मैदान छोड़ना नहीं होगा। अभी तो चुनी के दिन हैं। कुछ न कुछ हो सकता है। खेल का मज़ा तो अभी है।

ठाकुर साहब का मैं कायल हूं। पढ़े-लिखे विशेष नहीं हैं, इसलिये खरे हैं। शक्ति से अलग कोई संस्कृति होती है, इस भूल में वह नहीं रह सकते। बोले— "ऐसे नहीं चलेगा साहब। भाभी को बुलवाओ न देखता हूं वह कैसे राजी होती है। हमने तुम्हें नेता माना तुम्हारे बगैर दल हमारा बिखर जाएगा।

'बिखर कर कहीं नहीं जायेगा आपका या किसी का वश ठाकुर साहब ! ' मैंने हंसकर कहा 'सिर्फ बड़े समाज में घुल-मिल जायगा। फिर और हमें क्या चाहिए ? लो बुलाता हूं मामी को उनसे निपट लीजिएगा।'

'क्यों तुम कहां चले ?

"दो के बीच तीसरा अड़चन हो जाता है न। तुम्हें यह भी कहने को नहीं रहेगा कि मेरा लिहाज रहा पीछे अपना भरपूर असर तुम डाल सकोगे।'

बात यह थी कि इस कमरे के टेलीफोन पर धीमी घंटी आ गई थी। मुझे अनुमान था और ठाकुर साहब के सामने फोन पर मैं वह बात नहीं करना चाहता था। अन्दर जाकर राजश्री को भेज दिया और मैंने टेलीफोन लिया। अनुमान मेरा ठीक निकला भानुप्रताप बोल रहे थे, "सहाय ! अरे क्या कर रहे थे ? मैं तीन मिनट से फोन कान पर लिए बैठा हूं। सुनो पांच बजे चाय पर आ सकते हो ?—काम है।

'बताओ काम —आ क्यों नहीं सकता !

"भाई, तुम्हारा कुछ ठिकाना नहीं है। हम सबको जमीन पर छोड़ कर तुम उड़ने की जो तैयारी कर रहे हो। काम जमीन का है। आओगे, तब कहेंगे।"

'क्यों फोन कोई सुनने लगा है क्या ? कह डालो जो काम है।'

'बात यह है कि वहां जमना है—वह याद कर रहे थे।

"यही बात है तो जाने दो। बुनियाद ही नहीं रहने वाली है तो ऊपर चिनाई की बात क्या सोचना है। मैं पार्लियामेण्ट से इस्तीफा दे रहा हूं।

"अरे यह बेवकूफी न करना ! "तो ठहरो मैं ही तुम्हारी तरफ आ रहा हूं।

"जरूर आओ, लेकिन दो-ढाई घंटे निकाल कर। अभी ठाकुर साहब बैठे हैं। उनसे निपट जाने दो।

"यहीं बराबर बैठे हैं क्या तुम्हारे ? तुम—"

'नहीं गये बाहर हैं। बेफिक्र रहो।'

'तो देखना मुझसे मिलने से पहले कुछ गड़बड़ न करना। क्या हो गया है तुम्हें ? खैर आकर समझूँगी। अच्छा—'

फोन बन्द किया और माथे को हाथों में ले लिया। स्वतन्त्रता क्या सचमुच कोई चीज होती है ? जब तक अपने से इतर अनेकों 'पर' मौजूद हैं तब तक 'स्व' का कोई अपना तन्त्र शायद बन नहीं सकता है। अजब मालूम होता है कि एक अनेक से किस तरह बंधा है !

फोन पर फिर घंटी आई और उठाया तो मालूम हुआ कि रानी ड्राइंग रूम में बुला रही है। मैंने कहा 'क्यों ठाकुर साहब को तुमने जिताया कि नहीं ?'

'वही तो तुम्हें बुला रहे हैं। मुझे तुमने ऐसा बीच में क्यों डाल दिया है। मैं तो कह रही हूँ इन्हें कि मैं कुछ नहीं जानती। उन्हीं से पूछो कि करते हैं तो क्यों करते हैं। ठाकुर साहब कहते हैं कि मैं तुम्हें समझाऊं। आओ तो इनके सामने तुम्हें समझा के भी देख लेती हूँ।'

ठाकुर सच ही मुझ पर विश्वसनीय रहे हैं। हर तरह मेरी मदद की है। मेरे लेख को मेरे पास में संभाल रखने का श्रेय उन्हीं को है। मेरे सच्चे हितैषी हैं और जानता हूँ कि मेरे लिए हर वक्त तैयार हैं। इसीलिये मैं उनके सामने से डरता हूँ। उनका मन न रख सकूं तो मुझे कष्ट होगा।

वहां पहुँचा तो रानी ने कहा 'लीजिए ठाकुर साहब ! अब ये मुजरिम आ गये मुझे अब छुट्टी दीजिए।'

"जी नहीं भाभी जी ! आप नहीं जा पायेंगी। हम देहाती लोग हैं बात तहजीब से नहीं कर सकते तो इसका मतलब यह नहीं कि हमारी बात कच्ची हो जाए। आपको हमारी मदद करनी होगी। हम या तो लड़ना जानते हैं या हुकुम बजाना जानते हैं। यह जिस्म फिर उठा रहा है। ऐसे में बताइये हम बहाद बाबू को कैसे भूल सकते हैं ! नहीं

तो आपसे ठहरने की विनती न करता। "हाँ बताइये सहाय बाबू, आप हमें मंझधार में क्यों छोड़ रहे हैं?

"कौन कहता है? मैं तो उल्टे आपके बीच बसने की सोच रहा हूँ।

'नहीं आप ओहदे पर रहकर यहाँ दिल्ली से हमारा जितना भला कर सकते हैं खुद यहाँ रहकर उतना नहीं कर सकते। आप हमारी भलाई सोचते हैं या—हमारी भलाई इसमें है कि आप ओहदा रखें।' कहिये, भाभीजी कहिये न?

"ठाकुर साहब ठीक तो कहते हैं। हमारा ध्यान सेवा पर हो तो अपने मन को छोड़कर हमें जनता के मन की करनी चाहिए। है कि नहीं?'

"यही मैं कहता हूँ भाभी जी ठाकुर बोले "कि सिद्धांत पहले है या हम आदमी लोग पहले हैं? सिद्धांत रखना था तो सेवा-करम में क्यों पड़ना था। मुक्ती-बैराग में दुनिया से दूर चले जाते और आत्मसम्मान में मगन रहते। सेवा की राह पकड़ी है तो वह तो कठिन मारग है और अपने साथियों को उसमें छोड़ा नहीं जाता है। क्यों भाभी जी?

मैं चुप था और सुन रहा था।

राजी ने कहा 'सुन क्या रहे हो कहो जो तुम्हें कहना हो।

मैंने कहा "राजी तुम यह चाहती हो?

राजश्री ने बात बचाई, कहा "ठाकुर साहब को कहो न जो कहना हो। मुझसे क्या पूछते हो?"

"तुम्ही से पूछता हूँ। चाहती हो तुम कि मैं ओहदा लूँ?

"मेरे चाहने न चाहने की बात कहाँ है। जिनकी सेवा का व्रत लिया है उनसे सीधे क्यों नहीं पूछते?

मैं कठोर हुआ। बोला 'हाँ पहले तुम्हें ही पूछता हूँ। तुम चाहती हो?"

बीच में ठाकुर साहब बोले, 'आप अन्याय करते हैं, सहाय बाबू। जो कहेंगी समझा जायगा वह अपने लिए कहती हैं। हमने हर हालत

में आपका साथ दिया है। आपने सारे चुनाव हमारे इलाके से लड़े हैं। आपको अपने क्षेत्र में एक मिनट नहीं लगाना पड़ा है और हमने आपको मौका दिया है कि आप सारी ताकत दिल्ली में लगाएं। उस बल पर आप ऊंचे चढ़े हैं और मानना चाहिए कि उसकी ताकत वापस हमको भी मिली है। सौदे की बात नहीं कहता हूं लेकिन जिन्दगी लेन-देन पर चलती है। साफ कहिये कि क्या इस मौके पर आकर आप उस सब ताकत को बिखर जाने देंगे जो इन बारह बरसों में हमने कण-कण करके जोड़ी है और जिसके बल पर हमारे सारे इलाके में कुछ निखार आई है। आपके मन में कुछ सूझ है और आप उसे पूरा करना चाहते हैं। ठीक है, आप अपने को आजाद मान सकते हैं। लेकिन सोच लीजिए। इसमें भाभी जी को परेशान करने की जरूरत नहीं है। क्या सचमुच इसी तरह आप गिरस्ती चलाते हैं कि घर पर ऐसा रौब डालें ?'

मैंने ठाकुर से जान-बूझकर ध्यान हटाकर बीच में कहा, 'राजी, फिर तुमसे पूछता हूं। तुम चाहती हो ?

अनुभव कर रहा था कि मेरा बल बैठा है। पर जाने क्या भीतर से सत्य जगता हुआ मुझमें उठा कि मैं मानो अपने बावजूद राजश्री पर अपने सवाल का दबाव बढ़ाता ही चला गया। राजश्री बोली 'मैं आप लोगों के बीच से जा सकती हूं ?

'नहीं !" मैंने कहा "पहले जवाब देकर जाओ।

राजश्री अपनी जगह खड़ी हो गई। तेज होकर बोली "जवाब ? मैं पूछती हूं तुमने सेवा का व्रत लिया है कि नहीं ?

"नहीं लिया है !"

'तो मनचाहा तुम कर सकते हो !

कहकर राजश्री चली गई और मैं अपनी जगह पर ठिठका-सा रह गया। कुछ देर मुझसे कुछ नहीं बोला गया। जैसे ठाकुर साहब के सामने मुझे लज्जित किया गया हो। ठाकुर मुझे स्वागत भाव से देखते रहे। मैंने भी उनकी आंखों में देखा। सचमुच वहां किंचित् जय का भाव दिखाई

दिया। मुझे यह अच्छा नहीं लगा। जैसे रामजी उनके पक्ष का भ्रम बढ़ा गई हों। कुछ क्षण ऐसे ही निकल गये। फिर मैंने कहा "तुम लिया आपने ठाकुर साहब ? मैंने सेवा का व्रत नहीं लिया है !'

'तो यह सारे पन्द्रह वर्ष आपने क्या किया है ?

'धोखा दिया है ?

"नहीं तो क्या किया है ?

'तो मान लीजिये धोखा किया है !

'धोखा कहकर आप आसानी से नहीं बच सकते हैं, सहाय बाबू ! यह खेल की बात नहीं है। विक्रम की भी कुछ पहुंच है। आपके जरिये हम वहां तक पहुंच सकते थे शायद उतनी ऊंची पहुंच न हो लेकिन है। आपके बिना हम मुकाबले में कमजोर रह जाते हैं विक्रम ऊपर आ जाता है। ऐसे पन्द्रह बरस से ईंट-ईंट जोड़ी गई इमारत ढह जाती है। आप दिल्ली में बैठ कर उसे मजाक समझ सकते हैं लेकिन यहां देहात के खुले मैदान में भुगतना हमको पड़ता है। आपके अपने मन की और अकेले की बात होती तो मुझे यहां आने और झगड़ने की जरूरत न थी। आप का हमारा साथ रहा है लेकिन लगता है आप से ज्यादा एहसास और हमदर्दी हमारे लिए भाभीजी में है। आपमें अमूल उठ आया दिखता है जिसने आपको सख्त बना दिया है। कहिये आप क्या कहते हैं। भाभीजी आपकी हैं फिर भी आपसे बाहर जाने की हिम्मत दिखा सकी हैं ! उस नाराजी को मेहरबानी करके हम पर न उतारियेगा ! "

कहते हुए ठाकुर साहब मुस्कराये। उस मुस्कराहट पर मेरा भी तनाव सहसा ही बिखर गया और मैं भी हंस आया।

ठाकुर बोले घर की नाराजी आई-गई होती है। उसमें देखिये फैसला गलत न कर डालियेगा।

मैंने कहा, "ठाकुर साहब ! यह सच है कि जहां मैं पहुंचा और अब भी बैठा हूं वह सब आपकी बदौलत है। लेकिन यह क्या बात है कि हमने नीचे से कम-कम करके ताकत बनाई है और ईंट-ईंट करके इमारत

खड़ी की है—लेकिन यह सब कुछ टिका है ऊपर की मेहर के सहारे ! क्या इससे यही न साबित होता है कि बुनियाद कच्ची रह गई है और किस्मत को हमने अपने हाथों में नहीं लिया है, बल्कि ऊपर किसी के सहारे छोड़ दिया है। ऐसे ठाकुर साहब, हम कभी डर से नहीं छूट सकते कि विक्रम हमें पछाड़ न दे ! आप और हम क्या यह नहीं चाहेंगे कि यह अन्देशा हमेशा के लिए खत्म हो जाए ? और विक्रम खतरे की जगह खुद मदद बन जाए ?

आप क्या कहते हैं यह सहाय बाबू किस आपका ठिकाने है ?"

"क्यों ऐसा क्या हो नहीं सकता ?

"कभी नहीं हो सकता।

हो सकता है। "मान लीजिए मैं जगह खाली करता हूं और हम दोनों कोशिश करते हैं कि विक्रम मेरी जगह चुन जाय

"आपको खब्त तो नहीं हो गया ?

'किसी कदर शायद हो तो क्या है।

'हां, हो गया है। विक्रम और पार्लियामेंट में ?

कहकर ठाकुर हंसे।

"अरे भाई पार्लियामेंट से क्या होता है बस दो-चार बरस उछल कूद करने का मौका मिल जाता है। बाहर के लोग देखते रहते हैं कि हमारा आदमी क्या कर रहा है। इस तरह नकेल तो बाहर हम लोगों के हाथ ही रहती है। नहीं तो जनतन्त्र के माने कुछ नहीं रह जाते हैं। ताकत सरकार के हाथों में हो और बाहर सब कोई असहाय हो जाए, तो वह जनतन्त्र कहां रह जाता है कोरा तमाशा बन जाता है ! विक्रम की ताकत से आशंका हमें रहती है तो इसीलिए कि पद-ओहदे का उसे सहारा मिलता है। लोगों के बीच से उसे ताकत ऊंची होती है। एक दफा सरकार के सहारे उसे लटका दो तो वह अधर में रह जायेगा। और हम जमीन पर मजबूती से खड़े हो जाएं समझीं ठाकुर साहब ! समझ में आता है ?

"जी नहीं। समझ में यह आता है कि अब आपके बिना विक्रमसिं

से हमको मुलायम बनना होगा। लेकिन कहे देता हूँ महाशय बाबू कि हम गिरे तो आप किसी तरह उठे हुए नहीं रह सकते हैं।"

"लेकिन मैं उठा हुआ इसीलिए नहीं रहना चाहता हूँ ठाकुर साहब," मैंने कहा "कि आपको या हमको फिर कभी न गिरना पड़े!"

"तो आपका यही फैसला है?

"नहीं आप जा अभी नहीं रहे हैं। चाय-पी के जाइयेगा। और फिर शाम को हमें बातचीत करनी है।"

"कृपा है, मुझे कुछ काम है। और बात के लिए अब क्या रह गया है?"

"जी नहीं बहुत कुछ रह गया है। सभी कुछ रह गया है। यह बतलाइए कि आपका तो बड़ा इलाका है कहीं किसी गाँव में रहने-बसने का बन्दोबस्त मेरे लिए नहीं कर दीजियेगा?

ठाकुर का मन मैं देख सका कि मुलायम नहीं होना चाहता था। ठाकुर बोले "पहले भाभीजी से पूछ लीजिये।

"उन्हीं के लिए तो कह रहा हूँ!

"उनके लिए जब कहियेगा तब सब कुछ हो जायेगा। अभी तो अपने लिए कह रहे हैं आप और—

"अच्छा अच्छा!" मैंने कहा "बुलाता हूँ उन्हीं को और उनकी इजाज़त के बगैर तो आप यहाँ से जा नहीं सकियेगा

"नहीं उनको न बुलाइए।"

मैं अटन खड़ा हुआ था और रानी के आने पर कहा "ठाकुर साहब जाना चाहते हैं।

रानी ने कहा "क्यों ठाकुर साहब?

"कुछ शहर में काम था भाभी जी।"

"अच्छा, अच्छा। काम देखा जायेगा" क्यों जी, तुमने नाराज़ तो नहीं कर दिया इन्हें?

"तुम रानी घर की इसीलिए तो बुलाया है।

खड़ी की है—लेकिन यह सब कुछ टिका है ऊपर की मेहर के सहारे ! क्या इससे यही न साबित होता है कि बुनियाद कच्ची रह गई है और किस्मत को हमने अपने हाथों में नहीं लिया है बल्कि ऊपर किसी के सहारे लटका दिया है। ऐसे ठाकुर साहब हम कभी डर से नहीं छूट सकते कि विक्रम हमें पछाड़ न दे ! आप और हम क्या यह नहीं चाहेंगे कि यह अन्देशा हमेशा के लिए खत्म हो जाए ? और विक्रम खतरे की जगह खुद मदद बन जाए ?

"आप क्या कहते हैं यह सहाय बाबू, फिर आपका ठिकाने है ?'

'क्यों ऐसा क्या हो नहीं सकता ?

'कभी नहीं हो सकता।

हो सकता है। मान लीजिए मैं जगह खाली करता हूं और हम दोनों कोशिश करते हैं कि विक्रम मेरी जगह चुन जाए

"आपको लकवा तो नहीं हो गया ?

'किसी कदर पागल हो तो गया है।

"हां हो गया है। विक्रम और पार्लियामेंट में ?

कहकर ठाकुर हंसे।

"अरे भाई, पार्लियामेंट से क्या होता है, बस दो-चार बरस चमक-दूर करने का मौका मिल जाता है। बाहर के लोग देखते रहते हैं कि हमारा आदमी क्या कर रहा है। इस तरह नकेल तो बाहर हम लोगों के हाथ ही रहती है। नहीं तो जनतन्त्र के माने कुछ नहीं रह जाते हैं। ताकत सरकार के हाथों में हो और बाहर सब कोई असहाय हो जाए, तो वह जनतन्त्र नहीं रह जाता है कोरा तमाशा बन जाता है। विक्रम की ताकत से आशंका हमें रहती है तो इसीलिए कि पद-ओहदे पर उसे सहारा नहीं है। लोगों के बीच से उसे ताकत खींचनी होती है। एक दफे सरकार के सहारे उसे लटका दो तो वह अधर में रह जायेगा। और हम जमीन पर मजबूती से खड़े हो जाएं" समझे ठाकुर साहब ! समझ में आता है ?"

"जी नहीं। समझ में यह आता है कि अब आपके बिना विक्रमसिंह

है हमको सुलझा लेना होगा। लेकिन कहे देता हूं सहाय बाबू कि हम गिरे तो आप किसी तरह उठे हुए नहीं रह सकते हैं।

"लेकिन मैं उठा हुआ इसीलिए नहीं रहना चाहता हूं ठाकुर साहब!" मैंने कहा "कि आपको या हमको फिर कभी न गिरना पड़े।"

"तो आपका यही फैसला है?

"नहीं आप जा अभी नहीं रहे हैं। चा-पी के जाइयेगा। और फिर शाम को हमें बातचीत करनी है।

"कृपा है मुझे कुछ काम है। और बात के लिए अब क्या रह गया है?"

"जी नहीं बहुत कुछ रह गया है। सभी कुछ रह गया है। यह बताइये कि आपका तो बड़ा इलाका है कहीं किसी गांव में रहने-बसने का बन्दोबस्त मेरे लिए नहीं कर दीजियेगा?

ठाकुर का मन मैं देख सका कि, मुलायम नहीं होना चाहता था। ठाकुर बोले 'पहले भाभीजी से पूछ लीजिये।

"उन्हीं के लिए तो कह रहा हूं!

"उनके लिए जब कहियेगा तब सब कुछ हो जायेगा। अभी तो अपने लिए कह रहे हैं आप और—

'अच्छा अच्छा!' मैंने कहा 'बुलाता हूं उन्हीं को और उनकी इजाजत के बगैर तो आप यहां से जा नहीं सकियेगा

"नहीं उनको न बुलाइए।

मैं बटन दबा चुका था और रानी के आने पर कहा "ठाकुर साहब जाना चाहते हैं।

रानी ने कहा 'क्यों ठाकुर साहब?"

"कुछ शहर में काम था भाभी जी।

"अच्छा अच्छा। काम देखा जायेगा" "क्यों जी तुमने नाराज तो नहीं कर दिया इन्हें?

"तुम राजी कर लो इसीलिए तो बुलाया है।

खड़ी की है—लेकिन यह सब कुछ टिका है ऊपर की मेहर के सहारे। क्या इससे यही न साबित होता है कि बुनियाद कच्ची रह गई है और किस्मत को हमने अपने हाथों में नहीं लिया है, बल्कि ऊपर किसी के सहारे अटका दिया है। ऐसे ठाकुर साहब हम कभी डर से नहीं छूट सकते कि विक्रम हमें पछाड़ न दे! आप और हम क्या यह नहीं चाहेंगे कि यह अन्देशा हमेशा के लिए खत्म हो जाए? और विक्रम खतरे की जगह खुद मदद बन जाए?

"आप क्या कहते हैं यह सहाय बाबू किस आपका ठिकाने है?"

"क्यों ऐसा क्या हो नहीं सकता?

"कभी नहीं हो सकता।

हो सकता है। मान लीजिए मैं जगह खाली करता हूं और हम दोनों कोशिश करते हैं कि विक्रम मेरी जगह चुन जाय

"आपको लक्वा तो नहीं हो गया?

"किसी कदर शायद हो तो गया है।

"हां, हो गया है। विक्रम और पार्लियामेंट में?

कहकर ठाकुर हंसे।

"अरे भाई, पार्लियामेंट से क्या होता है बस दो-चार बरस उछल कूद करने का मौका मिल जाता है। बाहर के लोग देखते रहते हैं कि हमारा आदमी क्या कर रहा है। इस तरह नकेल तो बाहर हम लोगों के हाथ ही रहती है। नहीं तो जनतन्त्र के माने कुछ नहीं रह जाते हैं। ताकत सरकार के हाथों में हो और बाहर सब कोई असहाय हो जाए, तो वह जनतन्त्र नहीं रह जाता है कोरा तमाशा बन जाता है! विक्रम की ताकत से आशंका हमें रहती है तो इसीलिए कि पद-ओहदे का उसे सहारा नहीं है। लोगों के बीच से उसे ताकत मिलती होती है। एक दफा सरकार के सहारे उसे अटका दो तो वह अधर में रह जायेगा। और हम जमीन पर मजबूती से खड़े हो जाएं समझे ठाकुर साहब! समझ में आता है?"

"जी नहीं। समझ में यह आता है कि अब आपके बिना विक्रमसिंह

ऊपर से अब मामला नहीं सँभलेगा। नीचे कुछ नींव से साथ को बनाना होगा। यह न होता तो मैं ही साथियों का साथ देने में कैसे पीछे रह सकता था!

"और, तुम आओगे तो न आज पर? और छः बजे फिर साथ चलेंगे।

"तुम कहते हो तो—ठीक है।

'तो मैं चलूँ—उन्हें कह दूँगा।

"ठहरो प्रताप एक बात पूछूँ। मेरी जगह तुम क्यों नहीं हो सकते?

"होश में हो तुम—

प्रताप आगे कुछ कहे कि बीच में मंजु आ गई। बोली—"तमारा आई है, बाबू जी क्या कह दूँ उसे?'

"तमारा?

'हाँ। आप भूल गये? अगर चाहती थी अभी न हो तो, क्या कह दूँ?"

"तुम से मिलने आई होगी।

'नहीं आपसे।

"मुझसे?—तो जरा ठहरेगी।'

"जरा—ज्यादा तो नहीं?'

"नहीं मैं खुद खबर दूँगा।

मैं असन्तुष्ट था। जैसा कि मंजु असन्तुष्ट लौटी है और सामने के प्रताप भी असन्तुष्ट [illegible] है। बोले "तमारा—तुमसे मिला करती है।"

"मंजु की मित्र है—कभी-कभी आ जाती है।

"नहीं सहाय, यह ढंग ठीक नहीं है।"

"अब तो मैं प्रोटोकोल में नहीं हूँ, भाई।"

,'यह बात नहीं। तमारा औरत ठीक नहीं है।

"तुम नई मुन्सिफ ठहरे। यहाँ तो लगता है, इससे बदतर कोई हो नहीं सकता है।"

"यह बचपना मत ओढ़ना सहाय, रोता जाओगे। यह औरत भी

'इस घर मत जाइएगा आप ठाकुर साहब। इनकी तो मत मारी है। जाइए भी आप जाइए। आपके लिए ऊपर कोई आये भी हैं' ठाकुर साहब चलिए, मेरे वाले कमरे में आइए। खाना खा-पीकर हो सकेगा। 'आप क्यों बैठे हैं? जाइए न?"

रानी को मैं जानता हूँ। भानुप्रताप आये तो बाहर-ही-बाहर वह उन्हें मेरे अध्ययन कक्ष में बिठा आई थी। मेरे पहुँचते ही प्रताप बोले—

'कहाँ चमके हुए थे आप जनाब?

"वे ठाकुर साहब थे।"

'गये?

"चले जायेंगे। 'हाँ कहो वह क्या बात थी?

बी॰पी॰ का ख्याल है, तुम बच रहे हो। मिलने तक से कतराते हो।"

'नहीं तो! उनका कोई सन्देश मुझे नहीं मिला!

"तो क्या वह सीधे तुमसे कहते?

"क्या हर्ज था?"

'अरे भई जानते तो हो। इसी पर दस तरह के अनुमान बाँधे जाने लगते हैं। खैर, अब मैं कहता तो हूँ कि वह मिलना चाहते हैं। मैंने छः बजे का समय माँग लिया है। चल सकोगे?"

"सच बताओ तुम तो अपनी तरफ से बीच में यह ताना-बाना नहीं बुन रहे हो?

'नहीं मैं नहीं। उन्हीं की इच्छा है।

'ठीक है चला चलूँगा। लेकिन लाभ कुछ नहीं है।

"देखो महाशय हालत देश की ठीक नहीं है। स्थिति सामान्य होती तो कोई बात नहीं थी। प की जगह च हो सकता था। पर हालत नाजुक है और आगे-पीछे साथियों की टीम बिखरी तो शासन की स्थिरता पर असर पड़ सकता है। विरोधी लोग सहयोग तो नहीं करते। ऐसी हालत में तुम्हारा बिखरा रहना और जिद रखना ठीक नहीं है।

"जिद की बात नहीं है प्रताप! देश की हालत की ही बात है।

ऊपर से अब मामला नहीं सँभलेगा। नीचे मुझे नींव से साख को बनाना होगा। यह न होता तो मैं ही साथियों का साथ देने में कैसे पीछे रह सकता था।"

"खैर, तुम आओगे तो न चाय पर ? और छः बजे फिर साथ चलेंगे।

"तुम कहते हो तो—ठीक है।"

"तो मैं चलूं—उन्हें कह दूंगा।

"ठहरो प्रताप एक बात पूछूं। मेरी जगह तुम क्यों नहीं हो सकते ?"

"होश में हो तुम—

प्रताप आगे कुछ कहे कि बीच में मंजु आ गई। बोली—'रमारा आई है, बाबू जी क्या कह दूं उसे ?"

"रमारा ?

'हां। आप भूल गये ? बस्त चाहती थी अभी न हो तो, क्या कह दूं ?"

"तुम से मिलने आई होगी।

'नहीं आपसे।

"मुझसे ?—तो जरा ठहरेगी।

"जरा—ज्यादा तो नहीं ?

"नहीं मैं खुद खबर दूंगा।'

मैं असन्तुष्ट था। देखा कि मंजु असन्तुष्ट लौटी है और सामने के प्रताप भी असन्तुष्ट बैठे हैं। बोले "रमारा—तुमसे मिला करती है !"

"मंजु की मित्र है—कभी-कभी आ जाती है।

"नहीं सहाय, यह शौक ठीक नहीं है।'

"अब तो मैं प्रोटोकोल में नहीं हूं, भाई।"

"यह बात नहीं। रमारा चरित्र ठीक नहीं है।"

"तुम भई मुन्सिफ ठहरे। यहां तो अपना है, इसप्र बरदार नहीं हो सकता है।"

"यह छुटपना मत ओढ़ना सहाय, मजा आयेगी। ...

दिखती है वह नहीं है।

"मुंह छोड़ो। भाई है वैसी चली जायगी। हां, तुम कहो—मेरी जगह तुम ही क्यों नहीं हो सकते ?

मोपे न चलो सहाय। म के बदले द को लो तो मनुज की जगह दनुज बैठा मिलेगा।—अच्छा पांच बजे आ रहे हो न ? मैं चलूं, तुम तमारा से मिलो-जुलो।

प्रताप चले गये और जाने का ढंग मुझे उनके योग्य नहीं मालूम हुआ। सदन में कुशल वक्ताकार माने जाते हैं। यह क्या कि झुंझलाकर इस तरह अपनी मजलिस बखेर गये।

दफ्तर की तो तमारा अकेली नहीं आई, मधु भी साथ आई। वही बोली— 'यह डर रही थी आपूची कि आप मिलेंगे नहीं। अब आपने खुद बुलाया तो भी डर कर मुझे साथ ले आई है।

"क्यों मिलता मैं क्यों नहीं ?

"इसी से पूछिए।

कहकर मधु तो चली गई और मैंने तमारा की ओर आंख उठाई। बड़ी प्यारी दिखती है तमारा। पैंतीस बरस की होगी। ब्याह नहीं किया है, आर्टिस्ट है। मैंने कहा— 'क्यों तमारा तुम मुझसे डरती थी ?"

"हां आर्टिस्ट लोग ठीक नहीं समझे जाते हैं। खास कर औरत आर्टिस्ट। इसलिए डरती थी।

"पर तुम न आर्टिस्ट नई हो न मुझसे मिलना तुम्हारा नया है। क्या नये सिरे से मेरे लिए तुम खराब बनना चाहती हो ?

हिन्दी तमारा सम्भल-सम्भल कर बोलती है और जरा रूसी तर्ज से बोलती है। इसलिए वह हिन्दी अतिरिक्त प्यारी लगती है। बोली

"खराब बनने की खराब समझ लिया जाय तभी से ठीक है। हम मर्यादा नहीं मानते हैं न, क्योंकि सच मर्यादा में नहीं आता है। हम मानना सच को चाहते हैं। उसमें पहले किसी या कुछ को भी नहीं मानना चाहते हैं देश तक को नहीं मानना चाहते हैं। इसमें और सबको गलती

सकती है पर तुम्हें नहीं मालूम होता है कि इसमें गलत क्या है ?

"नहीं कुछ गलत नहीं है।

"आप मुझे बहलाने को तो नहीं कह रहे हैं यह ?

"तुम जानती हो तुम्हें बहलाना मेरे लिए जरूरी नहीं है। फायदे मन्द भी नहीं है। क्यों समझती हो कि देश के बारे में सत्य को नहीं मान सकता हूं। तुम रूसी हो मैं हिन्दुस्तानी हूं। पर सच में तो दोनों इन्सान ही हैं। यह मानने में क्यों मुझे मुश्किल होनी चाहिए ?"

वह सुनकर एकदम जाने के लिए तैयार दिखाई दी। बोली—

'बस इतना ही मैं सुनना चाहती थी। अब समय नहीं सूनी। जा सकती हूं ?'

"जा सकती हो पर यह तो कुछ बात न हुई।

"फिर आऊंगी। एन्जिल ने (अजित को वह एन्जिल कहती है) डरा दिया था कि राजनीतिज्ञों से मुझे विशेष मिलना नहीं चाहिए।

"तो मैं राजनीतिज्ञ हूं ? जानती हो—यह अभिनंदन नहीं है ?"

"नहीं तो क्या है ? अच्छा—नमस्ते !"

तमारा भाई जैसे चली गई और उसका 'नमस्ते' जो भारतीय से कम रूसी न था सुनने से भी अधिक दिखाई देता रह गया। विचित्र है यह तमारा जो अपनी नमस्ते में कह गई है कि मैं राजनीतिज्ञ हूं !

तीन

डी० पी० से मिलकर अच्छा लगा। पर दुविधा भी बनी। प्रशंसा करनी होगी उनकी। भानुप्रताप को समय लगा देने में उन्हें कठिनाई न हुई। काफ़ी देर तक अपनी बातचीत होती रही। मुख्य इसमें यह कि देश को बिखराने वाली शक्तियाँ बढ़ रही हैं। ऐसे समय देश को एक रखना है, टूटने नहीं देना है। अन्त में यह प्रशासन का काम रह जाता है। यह काम निर्माण का है, हुकूमत का नहीं है। इसके लिए व्यक्ति व्यावहारिक से अधिक आदर्शवादी चाहिए। अब तुम' ?

मैं सुनता रहा था। प्रगट इतना ही किया कि सोचने जैसी बात हो सकती है।

अन्त में डी० पी० ने ऐसे कहा कि सहायता ही चाहते हों। भावुकता भरी न हो पर शालीनता तो प्रामाणिक थी ही। उनकी बात न रख सकने से जोर पड़ा। पर मैं आश्वासन कैसे देता? कारण मैं मानना चाहता हूँ कि देश नहीं प्रथम मनुष्य है। और मनुष्य के लिए प्रश्न प्रशासन से अधिक अनुशासन का है। प्रशासन की परिभाषा पाकर देश भी एक बंद और प्रभुसत्तात्मक धारणा में बैठा है उससे नुकसान ही हो रहा है। व्यवस्था आज उसी इकाई के नाम पर टिकी है। पर यह इकाई हमारे ज्ञान-विज्ञान के विकास का साथ नहीं दे पाती। राष्ट्र और राष्ट्रवाद पिछड़ा पड़ रहा है। स्वदेश-विदेश के भाव के अधीन समस्याएं पैदा हो रही हैं। उससे आगे जाना जरूरी हो और जरूरी तो है, तो क्या राजनीय बनने

कि यह काम आसान हो सकेगा ? मुझे यह सम्भव नहीं मालूम होता है। और यही दुविधा है।

पर इससे भी भीतरी कुछ दूसरा है। आदमी अपने को सही जान नहीं सकता। उसकी जगह यह जो दूसरे देते हैं। उसी में सही वास्तविकता है। देखता हूं, राजश्री फिर अनमनी है। उस दिन तो हतार्थ मालूम हुई थी सुनकर कि हमें धरती पर आना और श्रम से लगकर रहना है। श्रम पर नहीं तो हम भ्रम पर जीते हैं। लेकिन फिर ?

यही जानना चाहता हूं। ठाकुर साहब को उसने जाने नहीं दिया था। बल्कि सामान धर समझा दिया था। मुझको यह मुझे चाहिये था। ठाकुर मेरे राजनीतिक जीवन के इतिहास में बुनियाद की तरह अनिवार्य रहे हैं। उन्हीं के प्रति फिर दुर्भाव मुझसे कैसे हो सका। शायद राजनीति में यही होने लग जाता है। उपयोगिता की वेदी पर हार्दिकता को इन्सान कुर्बान करने लग जाता है।

मेरे दोष का आरंभ ही समझो। रात्री ठाकुर को लेकर व्यस्त रही होगी। कुछ मैं भी देर से आया था। इससे रात को बात तक नहीं हो सकी थी और सवेरे साढ़े चार से उसका दिन शुरू हो जाता है।

इस समय मैं नाश्ते पर बैठा हूं। मालूम होता है ठाकुर के नाश्ते की व्यवस्था अलग हुई है। मैंने आरम्भ करने से पूर्व राजश्री को बुलवाया।

वह आई और आते ही कहा "कहो ?" कहा ऐसे कि जल्दी हो और काम हो।

मैंने कहा, "जरा बैठ सकोगी ?"

"बैठना है तो फिर घण्टे भर बाद रखो।"

"ठाकुर साहब ठहर रहे हैं ?"

"अभी तो जाने की कह रहे हैं। नौ बजे ट्रेन जाती है।"

"नाश्ता हमारा अलग क्यों रखा गया है ?"

"मैंने सोचा, शायद"

तीन

बी० पी० से मिलकर अच्छा लगा। पर दुविधा भी बनी। अपना करनी होगी उनकी। भानुप्रताप को अलग बना देने में उन्हें कठिनाई न हुई। काफी देर तक अपनी बातचीत होती रही। मुख्य इसमें यह कि देश को बिखराने वाली शक्तियां बढ़ रही हैं। ऐसे समय देश को एक रखना है टूटने नहीं देना है। अन्त में यह प्रशासन का काम रह जाता है। यह काम निर्माण का है, हुकूमत का नहीं है। इसके लिए व्यक्ति व्यावहारिक से अधिक भावप्रवण चाहिए। अब तुम' ?

मैं सुनता रहा था। प्रगट इतना ही किया कि सोचने जैसी बात हो सकती है।

अन्त में बी० पी० ने ऐसे कहा कि सहायता ही चाहते हों। भावुकता भले न हो पर शालीनता तो प्रामाणिक थी ही। उनकी बात न रख सकने में जोर पड़ा। पर मैं आश्वासन कैसे देता? कारण मैं मानना चाहता हूं कि देश नहीं प्रथम मनुष्य है। और मनुष्य के लिए प्रश्न प्रशासन से अधिक अनुशासन का है। प्रशासन की परिभाषा पाकर देश भी एक बंद और प्रभुसत्तात्मक धारणा से बैठा है उससे नुकसान ही हो रहा है। व्यवस्था आज उसी इकाई के मान पर टिकी है। पर वह इकाई हमारे ज्ञान-विज्ञान के विकास का साथ नहीं दे पाती। राष्ट्र और राष्ट्रवाद पिछड़ा पड़ रहा है। स्वदेश विदेश के भाव से नवीन समस्याएं पैदा हो रही हैं। उससे आगे जाना जरूरी हो और जरूरी तो है तो क्या राजकीय बनने

कि यह काम आसान हो सकेगा ? मुझे यह सम्भव नहीं मालूम होता है। और यही दुविधा है।

पर उससे भी भीतरी कुछ दूसरा है। आदमी अपने को नहीं जान नहीं सकता। उसकी जगह वह जो दूसरे देते हैं। उसी में सही आत्मविश्वास है। देखता हूं, रागिनी फिर अनमनी है। उस दिन तो इत्मीनान मालूम हुई थी सुनकर कि हमें जल्दी घर जाना और अब से बचकर रहना है। अब पर नहीं तो हम अब पर भीत हैं। लेकिन फिर ?

यही जानना चाहता हूं। ठाकुर साहब को उसने जाने नहीं दिया था। बल्कि सामान घर मंगवा लिया था। पूछना यह मुझे वाजिब था। ठाकुर मेरे राजनीतिक जीवन के इतिहास में बुनियाद की तरह अनिवार्य रहे हैं। उन्हीं के प्रति फिर दुर्लक्ष मुझसे कैसे हो सका। शायद राजनीति में यही होने लग जाता है। उपयोगिता की वेदी पर हार्दिकता को इन्सान कुर्बान करने लग जाता है।

मेरे रोष का कारण ही समझो। रागिनी ठाकुर को लेकर व्यस्त रही होगी। कुछ मैं भी देर से आया था। इससे रात को बात तक नहीं हो सकी थी और सवेरे साढ़े चार से उसका दिन शुरू हो जाता है।

इस समय मैं नाश्ते पर बैठा हूं। मालूम होता है, ठाकुर के नाश्ते की व्यवस्था खतम हुई है। मैंने आरम्भ करने से पूर्व रागिनी को बुलवाया।

वह आई और आते ही कहा "कहो ? कहा ऐसे कि जल्दी हो और काम हो।

मैंने कहा "जरा बैठ सकोगी ?

'बैठना है तो फिर घण्टे भर बाद रखो।

"ठाकुर साहब ठहर रहे हैं ?"

"अभी तो जाने की कह रहे हैं। नौ बजे ट्रेन जाती है।'

"नाश्ता हमारा अलग क्यों रखा गया है ?

"मैंने सोचा, शायद"

तुम कहाँ से आ रही हो ? नाश्ते पर उनके साथ थीं ?"

"हाँ तुम नहीं तो मुझे साथ देना चाहिए था ।

यह तो ठीक है । लेकिन चलो मैं भी वहीं चलता हूं । यह सब वहीं खाने को कह दो । ठाकुर नाराज तो नहीं हैं ?

'उतने तो नहीं । पर—निराश हैं ।

मैं अपनी जगह खड़ा हो गया था । राजी पहले से खड़ी थी । जो हुआ जाने कैसा भी हुआ । मैंने कहा "एक बात पूछूं राजी ? पहले तुम मान गई थीं अब समझती हो । सोचो तुम्हारे बिना मेरा कैसे चलेगा ?

राजी ने टाल दिया कहा "क्यों चल नहीं रहे ठाकुर की तरफ ?"

"चल रहा हूं । पर तुमने बताया नहीं ।

"क्या बताऊं । छोड़ना मुझे कभी समझ में नहीं आया । तुम्हें उसी का महत्व दीख रहा है । अब बताओ क्या बताऊं ?

"मैं मतलब नहीं समझा तुम्हारा ।

"यहां बहस करोगे ? मैं उन्हें नाश्ते के बीच छोड़कर आई हूं । राह देखते होंगे चलो ।"

हमारे पहुंचते ही ठाकुर महादेव सिंह खड़े हो गये ।

'आओ सहाय ! नहीं उधर नहीं इधर बैठो ।

"सुनता हूं नौ बजे की गाड़ी से तुम जा रहे हो ठाकुर !"

"हां जा रहा हूं ।

'नहीं नहीं जाओगे ।"

"तुम हुकुम तो मिनिस्टर जैसा चला रहे हो । कल शाम सचमुच बन गये ही क्या ?

"नहीं तो बात नहीं मानोगे ?"

"कैसे मानूंगा ? मजबूरी के बिना कभी नहीं मान सकता हूं ।"

मेरा जी हलका था । नौकर के हाथ से मैंने खुद मेज को लेकर लगा दिया । चीजें खुद लेकर मेज पर रखीं और कहा "ठाकुर, कुछ तब

नहीं हो रहा है मन में। अभी तुम्हारी भाभी से पूछ रहा था कि ठीक बताएं, इनका मन क्या है?"

"क्यों भाभी जी आपने बताया नहीं—कि मन क्या है?

राजश्री बोली नहीं।

"यह बात नहीं होगी भाभी जी। हम तो इनके लिए कुछ हैं नहीं। ठीक है साहब देहात के हैं और खिदमत के लिए हैं। लेकिन आप—मगर खैर "

"कह चुकी हूं मैं इनसे कि हम घरवालियों का मन अलग होने के लिए नहीं होता है। फिर भी पूछते हैं तो अलग राय देनी होती है। नहीं तो पूछने का मतलब क्या है?

"आप भी गजब हैं भाभी जी। अभी कह रही थीं मुझे कि आप मेरी मदद नहीं कर सकती हैं और मुझे चाहिए कि मैं बिम्मू को बढ़ावे में मदद दूं और हम लोग सब चुनावों से मुंह मोड़ लें। और अब? "

"यह तो मैं मानती हूं कि मोहर्रों में या दूसरे तरह के बड़प्पन में असल सुख नहीं है। पर तुम मर्दों का उधर से मन हटे न? हटता है तब तक बढ़ने की सूरत नहीं रहती या अन्दर लगन नहीं रहती।"

"मुझको कह रही हो यह तुम, राज?'

'सबको कह रही हूं।"

ठाकुर बोले "छोड़िए। यह कहिये कि कल वहां क्या कुछ हुआ?"

"क्या होता वही देश-विदेश की बातें। पर बी० पी० साफ दिल के आदमी हैं। लेकिन दुनिया टेढ़ी है। देखना है कब तक चलेगा।

"कब तक चलेगा?" ठाकुर ने चमककर कहा। "माने?"

'माने कुछ नहीं। राजनीति का नक्शा उलट-पलट हुआ ही करता है।"

"खैर जी यह बताओ वह साफ आफर कर रहे थे कि नहीं?

"बहुत साफ तो कैसे करते! इन्कार सुनने को करते? बाकी सब "

"तो ठीक है साहब हमको अब चलने दो।"

"नहीं ठाकुर क्यों राजी रहती क्यों नहीं हो कल चले जाएंगे।'

"तुम कहाँ से आ रही हो ? रास्ते पर उनके साथ थीं ?'

"हाँ तुम नहीं तो मुझे साथ देना चाहिए था !'

'यह तो ठीक है । लेकिन चलो मैं भी वहीं चलता हूँ । यह सब वहीं लाने को कह दो । ठाकुर नाराज तो नहीं हैं ?

उतने तो नहीं । पर—निराश हैं ।

मैं अपनी जगह खड़ा हो आया था । रानी पहले से खड़ी थी । जो हुआ जाने कैसा भी हुआ । मैंने कहा "एक बात पूछूँ रानी ? पहले तुम नाराज थीं अब मनमनी हो । 'सोचो तुम्हारे बिना मेरा कैसे चलेगा ?"

रानी ने टाल दिया कहा 'क्यों चल नहीं रहे ठाकुर की तरफ ?"

"चल रहा हूँ । पर तुमने बताया नहीं ।

"क्या बताऊँ । छोड़ना मुझे कभी समझ में नहीं आया । तुम्हें रानी का महत्त्व दीख रहा है । अब बताओ क्या बताऊँ ?

"मैं मतलब नहीं समझा तुम्हारा !

"यहां बहस करोगे ? मैं उन्हें नाश्ते के बीच छोड़कर आई हूँ । राह देखते होंगे चलो ।

हमारे पहुँचते ही ठाकुर महादेव सिंह खड़े हो गये ।

'आओ वहाब ! यहीं उधर नहीं इधर बैठो ।

"सुनता हूँ तो दस की गाड़ी से तुम जा रहे हो ठाकुर !"

"हाँ जा रहा हूँ ।

'नहीं नहीं जाओगे ।"

"तुम हुकुम तो मिनिस्टर जैसा चला रहे हो । बस शाम सचमुच बन आये हो क्या ?

"नहीं तो मान नहीं मानोगे ?

"कैसे मानूँगा ? मजबूरी के बिना कभी नहीं मान सकता हूँ ।"

मेरा जी हलका था । नौकर के हाथ से मैंने गुड़ मेज को खिसका लिया । चीजें गुड़ लेकर मेज पर रखीं और कहा "ठाकुर, कुछ तय

साथ गई तो।"

"तो तुम ठहर रहे हो, ठाकुर? यह ठीक है। सच कहता हूं महादेव, कोरी बातों और किताबों पर अधर में ऊंचे उठे रहना अब मैं नहीं चाहता हूं। पांव के नीचे जमीन चाहता हूं। इसलिए तुम्हारी शरण हूं। मुझे अपने यहां आकर रहने की दावत तुम नहीं दे सकते हो?

"ना तुम्हारा मन नहीं लगेगा बाबू। जो अमृत पा जाता है वह फिर कहीं का या किसी का नहीं रह जाता है। मैं इसमें क्या करूं? हमारी राजश्री भाभी जी भी इसमें कुछ नहीं कर सकतीं। जरूर रोग का बीज तुममें पहले भी रहा होगा नहीं तो बीरेश्वर अब तक काम का आदमी न होता?

ठाकुर ने यह दुखती रग पर हाथ रखा था। मैंने कहा 'ठीक कहते हो, ठाकुर। जरूर मेरी ही गलती होगी। बीरेश्वर सब कुछ है ऊंचा पढ़ा-लिखा है। कोई ऐब नहीं है। फिर भी

बीरेश्वर की बात आते ही रानी चमक आई थी। वह मानो घबरा गई थी। उठकर आई और मेरे कंधे पर हाथ रख कर बोली 'देखो, फिर वही! मैं कहती हूं तुमने क्या नहीं किया। फिर तुम बार-बार मन में ग्लानि किस बात की लाते हो। विधाता भी तो कोई है। वही वाम हो तो हम क्या कर सकते हैं? तुमको मैंने बताया नहीं था बीरेश्वर अफसर नहीं है ठाकुर साहब के फार्म पर है और खुश है।

उस क्षण मैंने अनुभव किया कि मैं कितना अनावश्यक प्राणी हूं। मानो ऊंचाइयों पर मुझे अलग छोड़ दिया गया है। जहां आपसी सुख-दुख मेरी निगाह की चीजें न हों। मैंने ठाकुर की तरफ जिस निगाह से देखा, उसमें आभार और अनुनय रहा होगा। ठाकुर गरम हो आए और बोले, "देखो साहब! बीरेश्वर को तुमने अपना-अपना बेटा कहकर बिगाड़ दिया। तुम्हारी ममता ने उसे बिगाड़ा। उसे आदमी बनने देने की जरूरत थी। तुमने हमेशा उसे साये में और ससामती में रखा। अरे, सामने मुश्किल नहीं आयेगी तो आदमी में दम कैसे पैदा होगा? उसका मन उठता है

"वह तो कम ही आ रहे थे। मैंने अपने ऊपर बोझ लेकर एक दिन ठहराया था। लेकिन तुम्हारे बीच मैं न पड़ूँगी"

"अच्छी बात है ठाकुर, जैसा तुम सोचो। मुझे अधर में छोड़कर जाना ही चाहते हो तो जाओ।

रानी बोली "ठहर न जाइए ठाकुर साहब, एक दिन और?

"भाभी जी, ठहर तो दस दिन जाऊं कहु तो चरणों में यहीं रह जाऊं। पर मैं इस चीज को जानता हूं। जब दिमाग में अमुक बैठने लग जाता है तो आपकी सब लोग एक आदमी के लिए विरक्त हो जाते हैं। मैं तो सोचता हूं कि ऐसे आदमी को अकेले छोड़ देना चाहिए। करे अपने जी की और रहे मगन जैसे चाहे। औरों को भी उससे क्या। मैं तो कहूं भाभी जी आप भी अपने काम से काम रखो। रास्ते पर आना होगा इन्हें तो आप आयेंगे। न आए तो भटकें, अपने को मतलब? सुना भाभी जी बल्कि आप भी' आने दीजिये अब क्या कहूं। बल्कि पन्द्रह-बीस रोज के लिए आप भी हमारी तरफ आ जाइए। फिर हम निबटेंगे अपने अंतरयामी से। पूरी फुरसत से आत्मध्यान करेंगे और उसमें जोत जगेगी जो ये चाहते हैं। हम-तुमको जब याद करेंगे तब सेवा में हाजिर होने का मौका होगा। इससे पहले भाभी जी हम तब इनके लिए फालतू हैं फालतू। समझीं आप?

मैं सुनता बैठा रहा। कुछ बुरा न लग रहा था। बल्कि स्वर की आत्मीयता पर उलटे कुछ अच्छा ही लग रहा था।

रानी ने कहा "बात तो आप ठीक कहते हैं ठाकुर साहब! कल तक ठहरिए तो शायद सचमुच साथ चला चलूं। लाइए टिकट अपना—कहां है?

सच कहती हैं चलोगी?

"हां सकता है। आप तो ठहरने की हामी भरिये। लाइए टिकट, लीजिए फिरवाए देता हूं।

"कहिए, सहाय साहब! मुझे दोष फिर न दीजियेगा अगर भाभीजी

बाहरी आदमी होऊं। राजश्री हाथ पकड़कर मुझे ले चली और मैं वहां से निकाला गया सा साथ चल दिया।

रास्ते में राज ने बताया कि कंवर साहब शाम को जा रहे हैं। मिल लेना।

"अभी हैं घर में ?"

"वे तो देख लो। होंगे शायद।

राजश्री तो अपने काम से गई और मैं मंजु वाले कमरे में आया। कंवर साहब सोफ़ा पर फैल बैठे थे और पाइप पी रहे थे। मंजु और तमारा ओढ़ना-वस्त्र संभाल कर पैक कर रही थीं। कंवर साहब उठकर एक तरफ़ शायद पाइप छिपाने चले गये और मुझे मंजु के साथ तमारा को इस तरह व्यस्त देखकर कुछ विस्मय हुआ। मंजु बोली 'बाबू जी हम शाम जा रहे हैं।"

"एकाएक ! मुझे तो किसी ने बताया भी नहीं। अभी तुम्हारी भाभी ने कहा।

'आपको हम लोगों के लिए फ़ुरसत कहां रहती है ? '

"बका न कर मंजु। जानता हूं बड़ी नेतागर है तू। लेकिन मैं समझता था तुम लोग अभी दस-बारह दिन ठहरने वाले हो।

"हां वह तो था लेकिन अब इन्हें जरूरी काम आ गया है।"

"तो वह जा सकते थे। उनका तो यही हाल है। आज यहां तो कल वहां। लेकिन तुम ?

"मुझे भी जाना होगा। काम के अलावा बच्चे दशहरे पर आने वाले भी हैं।'

"वे तो यहां भी आ सकते हैं !'

"भाभी भी यही कहती थीं, लेकिन" ।

'तो साफ़ क्यों नहीं कहतीं कि तुम्हारा मन नहीं है। इसमें लेकिन क्या ?

"हां यही समझिये

और आसमान तक जाता है, पर करने की बात आती है तो हौसला हवा दीखता है। यह सब तुम्हारी बदौलत जो सब किया-धरा उसे दिये गये। लेकिन सुनो! अब वह मेरा बेटा है और तुम्हें फिकर करने की जरूरत नहीं है। सुनते हो? तुम कोई नहीं होते उसके। मैं डांटूंगा पीटूंगा जो चाहे करूंगा। निकम्मा मुझे है। तुम अपनी हमदर्दी लेकर अब आगे न आना। उसको मर्द बनना है। तुम लोगों ने अब तक उसे अच्छा अच्छा बनाना चाहा है। पर आदमी खुद होने और बनने के लिए होता है। बनाया जाना किसी को पसन्द नहीं होता। और तुम..."

तो ठाकुर... राजश्री ने कहा, "तुम भी उपदेश देते हो! अच्छा है इनको अभी उपदेश दें तो अच्छा ही है।"

"नहीं-नहीं भाभी जी!" ठाकुर एकदम लज्जित होकर बोले, "मैं माफी मांगता हूं। बीरेश्वर की बात आई, इसमें बेअदबी हो गई। आप लोगों का उसमें जरूर कसूर है।"

"मेरा है, इनका नहीं! अच्छा मैं उसे चुप-चुप दिये जाती थी। अच्छा मैं इन निकृष्टों का इंतजाम तो करूं। नहीं तो जुर्माना पड़ेगा। क्यों जी, आप जानते हैं कि बैठोगे?"

राज ने पहचान लिया था कि मैं भावुक हो रहा हूं। इसलिए जानती थी कि मुझे आगे यहां बैठने देना नहीं चाहिए। उठते हुए मैंने कहा, 'ठाकुर महादेव सिंह, तुम खाना टाल कर एक दिन आये हो, इसका अहसान मैं भूलूंगा नहीं।"

"जियरा भगवान इस ठाकुर का!" कहकर ठाकुर महादेव सिंह खिलखिलाकर हँसे। बोले, "अब ठाकुर कोई तो है जो तेरा अहसान मानता है! अब तो हौसला इस कि सिफारिश हो जाएगी। और तू नरक नहीं जाएगा!"

राजश्री ने कहा, "मैं अभी आई ठाकुर साहब। बीरेश्वर के लिये की बात भी तो है न?"

सुनकर मैंने उन दोनों की तरफ देखा। भाभी ने इस मामले में

घड़ी देखते हुए वे बोले 'सब हो गया ? अब चलना है कि नहीं । नहीं तो वहां इन्तजार होगा ।

कहने के बाद मामी उन्होंने मुझे देखा । जरा स्वर मध्यम करके कहा हम सब दोपहर का भोजन मशोबरा में ले रहे हैं । एक मित्र दम्पति आमन्त्रित है ।

मैंने कहा "अब तो समय भी हो रहा है । शायद लड़कियों को फिर तैयार भी होना है । तो आज ही शाम जा रहे हो ? देख लो जरूरी हो तो । चाहे तो मंजु को दो चार रोज रहने देते ।

'अभी तो बाबूजी जाने दीजिए । फिर आ जाएंगी—जब आप कहेंगे हम सभी आ सकते हैं ।"

"हां, जरूर-जरूर' कहकर मैं वहीं कुछ देर असमंजस में खड़ा रह गया । कुंवर साहब से औपचारिक ही एकाध बात हो पाती है । वह असन्तुष्ट हैं, स्पष्ट है । एक मामले में मैं उनकी मदद नहीं कर सका हूं । तब से उनका खयाल है कि मेरा सम्बन्ध उनकी जैसी प्रतिमा के लिए साधक के बजाए उलटे बाधक हो रहा है । मैंने कहा "तो आप लोग तैयार होइये मशोबरा के लिए । वैसे भई हो सके तो क्रिसमस की छुट्टियों में बाल-बच्चों को दो-चार दिन के लिए साथ लेते आना । माफ करना, सब ठीक चल रहा है ? नई मिल चल गई है न ? औद्योगन-शायद इन दिनों चालू हो जाने वाला था ।

'जी हां । सब ठीक है । जनवरी में माल बाहर आने लग जायेगा । आपकी कृपा है ।"

"अच्छा समारा मैं चलूं ।"

समारा ने हाथ जोड़े और जैसे कि कंठ में आई बात को उसने रोका । मुझे लगा कि युवकों की दुनिया आगे निकल रही है । जैसे हमारी दुनिया के साथ उनका परिचय कम होता जा रहा है और कुछ उनका जगत सर्वथा अलग मूल्यों पर नया बनता जा रहा है । "बोलो, बोलो कुछ कहना चाहती हो ?

तमारा बोली "सच बात बोलना चाहिए, एंजिल डार्लिंग ! ठीक बात क्यों नहीं बोलती हैं। इनका ख्याल है, मिस्टर सहाय कि आप यह डेरा नहीं रखने वाले हैं।

मैंने अपनी भवें समेटीं। मुझे घर की बातों में बाहर वालों का दखल अच्छा नहीं लगता है। मैंने तमारा को सीधा जवाब नहीं दिया था, और तमारा ने निश्चय ही इस पर लक्ष्य किया। मैंने कहा, "मंजु, तुमको मकान का ख्याल है ? बात ठीक है कि यह कोठी शायद नहीं रहने वाली है। लेकिन तुम कोठी में आती हो या मां-बाप के पास आती हो ?

"आप तमारा की बात पर न जाएं, बाबूजी। क्यों री तू क्या बक जाया करती है ?"

तमारा ने कहा "मिस्टर सहाय ! आप सबसे आशा करते हैं कि वे कर्तव्य में रहें। पर कोई कर्तव्य में नहीं रहता है। सब भौतिक परिस्थिति में रहते हैं।

"तमारा मैं तुम्हें आर्टिस्ट समझता था कि जो सच को अपने भीतर प्यारे मानते हैं बाहर उतना नहीं। फिर घर का एक कायदा होता है, उसमें बाहर वाले को नहीं आना चाहिए।"

तमारा के लिए मानो कुछ यह बात नई थी। वह मुझे देखती रह गई और बोली "भारत में परिवार पिता का स्वत्व होता है। यह शायद मुझे भूलना नहीं चाहिए था। आप उस परम्परा में से आये हो सकते हैं, पर माफी मांगती हूं कि मैंने मान लिया था कि आप उसके अधीन बनकर न रहते होंगे और मंजु का हक भी बराबर मानते होंगे। मैं बाहर की नहीं हूं एन्जिल की मित्र हूं।

"तुम आर्टिस्ट हो और तुम्हें हक है कि तुम न समझो और मेरी कोशिश भी नहीं होगी तुमको यह समझाने की।

तमारा खिलखिला हंसी। बड़ी दिलचस्प वह हंसी थी और उसमें व्यंग था। लगा कि उसने पीछे से कहा कि आप बड़े बन रहे हैं, लेकिन वह स्पष्ट सुनाई नहीं दिया। क्योंकि तभी कंवर साहब बाहर से आ गये थे।

घड़ी देखते हुए वे बोले "सब हो गया ? अब चलना है कि नहीं। नहीं तो वहां इन्तजार होगा।

कहने के बाद मानो उन्होंने मुझे देखा। जरा स्वर मध्यम करके कहा 'हम सब दोपहर का भोजन अशोका में ले रहे हैं। एक मित्र दम्पति आमन्त्रित हैं।'

मैंने कहा "तब तो समय भी हो रहा है। शायद लड़कियों को फिर तैयार भी होना है। तो आज ही शाम जा रहे हो ? वैसे तो जल्दी हो तो। चाहे तो मधु को दो-चार रोज रहने देते।

'अभी तो बाबूजी जाने दीजिए। फिर आ जाएंगी—जब आप कहेंगे हम सभी आ सकते हैं।"

"हां, जरूर-जरूर' कहकर मैं वहीं कुछ देर असमंजस में खड़ा रह गया। कुंवर साहब से औपचारिक ही एकाध बात हो पाती है। वह असन्तुष्ट हैं रुष्ट हैं। एक मामले में मैं उनकी मदद नहीं कर सका हूं। तब से उनका खयाल है कि मेरा सम्बन्ध उनकी जैसी प्रतिभा के लिए साधक के बजाए उल्टे बाधक हो रहा है। मैंने कहा "तो आप लोग तैयार होइये अशोका के लिए। देखो भई हो सके तो क्रिसमस की छुट्टियों में बाल-बच्चों को दो-चार दिन के लिए साथ लेते आना। माफ करना, सब ठीक चल रहा है ? नई मिल चल गई है न ? मैंने सुना—शायद इन दिनों चालू हो जाने वाला था।

'जी हां। सब ठीक है। जनवरी में माल बाहर जाने लग जायेगा। आपकी कृपा है।"

'अच्छा तमारा मैं चलूं।

तमारा ने हाथ जोड़े और जैसे कि कंठ में आई बात को उसने रोका। मुझे लगा कि युवकों की दुनिया आगे निकल रही है। जैसे हमारी दुनिया के साथ उनका परिचय कम होता जा रहा है और कुछ उनका जगत सर्वथा अलग मूल्यों पर नया बनता जा रहा है। "बोलो, बोलो कुछ कहना चाहती हो ?"

"नहीं, कुछ नहीं। सिर्फ यह कि पिता के नाते आप भूल जाते हैं कि कन्या अपने हक में इक्कीस वर्ष की अवस्था में अपनी अलग हैसियत रख सकती है। आप लोग शायद अलग व्यक्तित्व तक उसका न मानना चाहें—।

मैंने टालना चाहा, कहा, "तुम लोगों को हम से आगे तक देखना समझना है और मैं माफी चाहता हूं।"

उमा को मालूम नहीं क्या चाहती है। शायद भानु से और कुंवर साहब से मिलना चाहती है और मुझसे विशेष वास्ता नहीं चाहती। लेकिन मेरे मन में रह-रहकर होता है कि वह मिलना चाह ही न रहे, वास्ता उस राह कभी मुझसे न चाहती हो। बौद्धिक बहस के लिए जो कभी-कभी नाहक बात उठा लिया करती है सो मैं उसका खोखलापन जानता हूं। कहीं ऐसा तो नहीं कि खोखलापन अस्पष्ट हो।

लौट कर आया तो भानुप्रताप का छोटी एक पत्र था और नाहक बचाव के लिए इन्तजार में पड़ा था। पत्र में रोष था कि बी० पी० से मिलने के बाद मैं सीधे घर चला आया और उधर की तरफ सम्पर्क नहीं किया। बी० पी० का सन्देश है कि मेरा उत्तर जान कर उन्हें बताएं।

मुझे यह बहुत नागवार हुआ कि जो मुझे कहना है वह बी० पी० भानुप्रताप की मार्फत क्या जानना चाहते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि बीच में भानु प्रताप ही अपना महत्त्व और सामर्थ्य बढ़ा रहे हों। मैंने फोन उठाया। कहा, 'क्यों भाई, ऐसी नाराजी भी कब से होने लगी है।"

"साहब यह न समझना कि पतंग बिना डोर के उड़ती है। तुम डोर काट कर उड़ना चाहते हो क्या?

"मेरी समझ तुम खुद काट नहीं चुके हो, क्यों? उसकी फिकर छोड़ो।"

"साहब तुम्हें कैसे बताऊं कि बी० पी० पर हम लोग कितना और किस तरह और हाथ रखे हैं। नहीं तो बी० पी० के पास और कितने हैं। ऐसा न समझना कि तुम्हारे बिना उनका काम नहीं चल सकता है।

यह तो हम कुछ लोग हैं जो तुम्हें जरूरी मानते हैं। उन्हीं से तुम किनारे किनारे चलोगे तो कुछ बनने वाला नहीं है, समझ लेना। सही बताओ, क्या हुआ है?'

"भई प्रताप, तुम्हारा जोर कम तो नहीं है। इसलिए बी० पी० भी क्या करें। संकेत में उन्होंने कहा और मैं देख सका कि साफ है कि मेरा ही अवलम्ब उन्हें नहीं है, उनके पास विकल्प भी हैं। सच यह प्रताप कि जोर से काम नहीं होता है। मन की मजबूरी हो तो ही बात है। यह कुछ मालूम नहीं हुई।'

"तो मालूम होता है फिर तुम्हारे घर पर मुझे दस्तक देनी होगी। अरे भई राजनीति में जोर ही चला करता है, प्रेम नहीं चला करता है। और देखो एक बात कहता हूं। कुंवर साहब से तुम्हारी दोस्ती बढ़ती जा रही है। काफी तुम्हारे घर पर उसकी आवाजाही सुनी गई है, यह मुनासिब नहीं है।

"अच्छा अच्छा। कुंवर आज शाम आ रहा है सब आ रहे हैं। घबराओ नहीं।"

'तो सुनो, आज तुम्हारे यहां साढ़े चार बजे। ठीक?'

"ठीक! और मैंने फोन बन्द कर दिया।

चार

वही दिन है। शाम हो गई है। कुछ सर्दी है और सिर में दर्द मालूम होता है। कुंवर साहब को अभी विदा देकर आया हूं। राजश्री भी साथ थी। मंजु ने पैर छुए थे और कुंवर ने नमस्कार किया था। कार के रवाना होने पर हम चले आए, लेकिन राजश्री बीच से अपने काम के लिए निकल गई। ठाकुर साहब घर में हैं न! उसी सिलसिले का कुछ काम रहा होगा।

अकेला हूं अपने कमरे में। बड़ा बेगाना लग रहा है। कहीं कुछ समझ नहीं आता। जाने कब से आदमी आ रहा है और क्या भी कर मरता जा रहा है। कुछेक वर्षों में जैसे सब मुझको ही चले जाना है सभी को जाना है। आयु के इन गिनती के वर्षों में आखिर क्या है जो आदमी चाहता है जिसके लिए आयाम प्रयास में लगा रहता है? कहते हैं मूल में अस्तित्व है उसी को बचाना और बनाना है। इस आधार पर लोगों ने जीवन को समझा है समझाया भी है। लेकिन अस्तित्व स्वयं अपना प्रयोजन हो तो अन्त में मृत्यु क्यों आए? इसलिए लगता है कि अन्तिम प्रयोजन को मृत्यु की अनस्तित्व की भाषा में खोजना होगा। निज की समाप्ति और सर्वस्व-विसर्जन की भाषा में।

लेकिन मैं यह क्या सोच रहा हूं? वक्त क्या हो गया? साढ़े आठ? क्या है खाना आज नहीं मिलेगा? राजश्री अब तक कहां है? यह ठीक नहीं है।

सोचता हुआ मैं सीधा ठाकुर के कमरे में पहुंच गया। वहां राजश्री
नहीं थी और पलंग पर तकिये के सहारे ज़रा उठंग कर बैठे हुए ठाकुर
साहब सवेरे का अख़बार देख रहे थे। मेरे आने का उन्हें पता नहीं
चला। धीमे से स्टूल खींचकर मैं बैठ गया। कहा—"कहिए, किस ख़बर
में गिरफ्तार हैं?

"ओह! आओ कब आये?

'आकर बैठा हूं जाने किन मुद्दतों से। आपको होश भी हो!'

'होश सचमुच नहीं है—तुमने जो सब छीन लिया है। यह
बताओ तुमने मुझे रोका किस लिए?

'उसी के लिए आया हूं। राजश्री कहां है? वह भी होती तो
ठीक रहता।

'नहीं अपनी बातों में उन्हें बीच में न लो। वह तो, जो तुम
करोगे सब में राजी मिलेगी। तुम उनके ज़रिये मुझे कमज़ोर बना देते,
हो। वह तो देवी है और तुम—इसलिए अपने को चाहे जो करने को
आज़ाद मान लेते हो। जानता हूं तुमने अभी कुछ जमा नहीं किया है।
इंश्योरेंस पालिसी तक नहीं ली। अब यह छोड़-छाड़ की बातें कर रहे
हो—कुछ है तुम्हारे पास कि जिसके बल-बूते कूद रहे हो?

'यही तो तुमसे कहने आया था ठाकुर। पालियामेण्ट में तुमने
खासा अच्छा भत्ता अपने लिए तय कर रखा है। उससे पहले जागत
हो और भी ठाठ थे। इस सब के लिए बताओ मैं करता क्या हूं? जो
करता हूं, उस कोई काम नहीं कह सकता।

'जी हां! और वह क्या है जिसे आप काम कहेंगे? और पालिया
मेम्बर छोड़कर करने की तजवीज़ कर रहे हैं? कोई पहरी कमाई का
काम है?"

"तुम्हारे आश्रित होकर रहना चाहता हूं। ज़मीन में कुछ पसीना
बहाऊंगा और मन की तसल्ली रहेगी कि पसीने का खा रहा हूं हराम
का नहीं।'

"बहुत ठीक। जनाब ने हल कभी हाथ में सम्भाला है? जमीन जोती है? अपनी उमर को देखिये और कलम को देखिये और काम ...मासी यह सब छोड़िए। मुफ्त तक से तो काम होता नहीं है काम किसानी का और घास करेंगे वाह खूब!

'ठाकुर! हम लोग इतने क्यों हैं जिनके हित की बात उठाते आये हैं, उनके हित-अनहित को समझ क्या सकते हैं, जब तक उनकी जैसी हालत में अपने को न रखें! ऊपर से उपकारक-सुधारक बनने से तो नहीं चलता न?

'अच्छी बात है! तो व्यौहार की बात कीजिए। बोलिए कितने बीघे जमीन लीजियेगा? और किस किराये पर?

'तुम मजाक न समझो ठाकुर!

'बहुत देखा है मैंने तुमको सहाय! तुमसे यह काम नहीं होगा, नहीं होगा नहीं होगा। सबको अपना काम सजता है। बोलने बताने से अलग तुमसे दूसरा काम नहीं होने वाला है। और अगर एक उसी काम के लायक तुम बने हो तो जबरदस्ती अपने से नाराज न होओ। ऐसी नाराजी में भी रस मिलता है, तपस्वी उसी रस के स्वाद में तपस्या किया करते हैं। तुम्हें भी आखिरी वक्त यह तपस्या की बात सूझी हो सकती है। ठीक था तब, अगर अकेले होते। पर जिम्मेदारियाँ हैं और गांधी होने के लिए सिर्फ गांधी थे तुम नहीं हो।

मैंने ठाकुर को देखा। बेलाग उसका चेहरा था। जानता था कि ...ारी सच्ची बात शब्दों में खर्च कर देते हैं इसलिए अन्दर से एकदम कोमल हैं। लेकिन सचमुच क्या उसकी बात में सचाई भी नहीं है? मैं थोड़ी देर इसी सोच में रह गया कुछ बोला नहीं।

ठाकुर ने ही कहा— क्यों, सोच में मुंह लटका लिया? अरे, सोच फिकर की क्या बात है? नहीं है मन अब यहां, तो जाने दो। जाभी की ...ा मुकम्मल सब बातें पहले ही कर ली हैं। जितनी जमीन चाहो घर कर बैठ जाना। एक-दो साल सचमुच जी है तो देख लो प्रयोग करके।

इसमें परेशानी की क्या बात है ? कह दिया है मैंने भाभी जी से कि ठाकुर किसी तरह तुम लोगों से बाहर नहीं हो सकता। यह तो हुई बात की बात। लेकिन देहाती बोली हमारी माफ करना। मुमकिन हमें के तुम महमक होगे अगर मन पर अपने काबू नहीं रखोगे और हमारी भाभी जी को कष्ट दोगे।

मैंने ठाकुर को प्रश्नपूर्वक देखा। रुककर पूछा—"कष्ट की बात वह कहती थी क्या तुमसे ?

"पागल हुए हो सहाय। कष्ट की बात वह कहेंगी ? अब तक उन्होंने क्या पाया है सब कहना। कष्ट के सिवा क्या और तुमने दिया है उन्हें ? और तुम अपने से पूछो कि कभी कष्ट उन्होंने माना तक है ? इसीलिए तुम्हें साफ रुके सोचना चाहिए इससे पहले कि कुछ करो।"

मैं ठाकुर को देखता रह गया। राजश्री को लेकर उसमें कितनी दृढ़ता हो जाती है। मैं प्रशंसा कर सकता हूँ उस भाव की। प्रशंसा कर सकता हूँ राजश्री की भी कि जिसने यह सब ठाकुर का किया है। उसने मुझसे कुछ छिपाया नहीं है। मैं मानता हूँ कि स्त्री के प्रति पुरुष में पुरुषोचित भाव भी जगे तो कोई अनहोनी बात नहीं है। लेकिन प्रशंसा करनी होगी दोनों की राजश्री की और ठाकुर की कि दोनों मुद्दतों में नहीं है। फिर भी दोनों मर्यादा में हैं। इसीलिए यह दृढ़ता है जो कर्तव्य में से गिरी नहीं जाती है। उसमें स्नेह का पुट है इसलिए कठोर नहीं है। इस कारण यह दृढ़ता टूट नहीं सकती वह पवित्र का भी मुकाबला कर सकती है। उस कहीं लज्जित होने का अवकाश भी नहीं है न पीछे हटने का।

मैंने कहा—"मैं जानता हूँ ठाकुर कि मेरा मन रहेगा तभी उन्हें असली कष्ट होगा। बाकी बातें ऊपरी हैं और मैं नहीं मानता कि तुम यही नहीं जानते हो।"

ठाकुर बेचैन दिखाई दिये। तकिया उन्होंने छोड़ दिया। पाँव पलंग से नीचे किए और वह सीधे बैठ गये। बोले—'तुम पति हो सहाय,

इसलिए वह कुछ नहीं कह सकती मैं कुछ नहीं कह सकता। इस हैसियत का लाभ न लो ज्यादा।

मैंने हंसकर कहा— तुमने कहने में कभी कमी नहीं की ठाकुर और बीरेश्वर अब तुम्हारे पास है और राजश्री ने अब तक मुझे इसकी खबर तक नहीं दी। बोलो तुम ज्यादा हो कि मैं?

ठाकुर की भरी और सफेद मूंछें थीं। उनका मुंह कंप गया मूंछों के बाल हिले कनपटियां भी हिलने लगीं। मानो सहसा उनका गला भर आया हो और चेहरा टूटकर रो जाना चाहता हो। इसी समय राजश्री ने आकर कहा—"तुम यहां हो? नीला का फोन है।

"नीला का?

"हां।

"कब आई, कैसी है?

'*कहती थी आज बैठे पहुंचे प्लेन आया है और होटल पहुंचते ही* फोन कर रही हूं। रखा है फोन—बात कर लो।

"अच्छा ठाकुर साहब—

"खाना लग गया है मेज पर, फोन से जल्दी ही आ जाना।

ठाकुर बोले नहीं और दोनों को छोड़कर वहीं मैं आया और फोन में कहा—"नीला! यह क्या एकदम आसमान से?"

'हां। लेकिन टपकी नहीं हूं बाकायदा आसमान से उतर के आई हूं। यह भी है।

"कब तक ठहरना होगा?"

"कल शाम लौट जाएंगे अगर शाम बात न हो गई।

"तो—?

"बताओ तुम्हीं।

"अच्छा, मैं फिर फोन करूंगा।

'क्यों कैसे बोल रहे हो? सब ठीक तो है?

'खाना मेज पर लग गया है आ रहा हूं। बात फिर होगी।

तुम—सब ठीक-ठाक है न ?'

"फोन पर क्या आकर देखना कि किस कदर ठीक हो रही हूँ ?
छूटती हुई जा रही हूँ सब।

'ना ना देखना यह गजब न करना।

'चाहती हूँ कि किसी की नजर लग जाय। नहीं तो—शायद दूसरी
तरकीब नहीं है।

अच्छा मीता फोन करूँगा।

"फोन क्या दस बजे तो यह चले ही जायेंगे।

'तो तभी फोन करूँगा।"

क्या बकबकाती है कि फोन किया तो तुम से नहीं रात मिली !
बिगड़ी तो नहीं थी ?"

"नहीं नहीं नहीं ! कैसी बात करती हो ? अच्छा मीता।"

मैं ग्यारह तक यहीं हूँ। "सुना, ग्यारह तक।"

मैंने सुन लिया 'ग्यारह तक और खाने की मेज पर आया। बात यहां विशेष न हुई। मीता का प्रसंग स्पष्ट न था और संगत आरम्भ उसी से हो सकता था। राजश्री को भी मंजूर न था कि किसी मीता की चर्चा ठाकुर के सामने हो। ठाकुर को मैं जिस विभोर हालत में छोड़ आया था उसके बाद उनकी ओर से चर्चा का आरम्भ मुश्किल था। उस सर्द-हालत को तोड़ते हुए मैंने कहा—"राजी ! तुम ठाकुर साहब से ठीक बिठा लेना कि हमको उनके इलाके में पहुँचना है तो कैसे क्या होगा। सिर्फ तारीख तय करके सूचना हमें देनी रह जायगी। दो-चार दिन में शायद तारीख भी तय हो जाय" "या ऐसा हो सकता है कि तुम दो-एक रोज पहले चली जाओ। मैं यहां इतने मुतफ़र्रिक काम निपटा लूंगा।"

राजश्री ने सुन लिया जवाब नहीं दिया। ठाकुर भी नहीं बोले।

मैंने कहा—'ठाकुर साहब ! बीरेश्वर में हम लोग अलग अलग ही रहे। अब आपके यहाँ मौका होगा कि उसके नजदीक आ सकें। यह एक बड़ी बात होगी और छूटा फर्ज पूरा हो सकेगा।

ठाकुर ने मुझे देखा और अपनी ओर से कुछ नहीं कहा।

बड़ा अजब मालूम हो रहा था यह कि मैं ही बोलता जाऊं। इसलिए अचानक राजी की ओर मुखातिब होकर कहा—"राज, ठाकुर साहब कल धाम जा रहे हैं न?"

राजश्री ने धीमे से कहा—"हां।"

"तो दिन में हम लंच का तय रख सकते हैं नीलिमा के साथ?"

"मेरे लिए तो मुश्किल होगा, आप चले जाइएगा।"

"तो मेरे ही लिए जाना कौन जरूरी है। लेकिन यह लोग धाम को लौट जाने वाले हैं।"

"इसीलिए तो कहती हूं कि आप को जरूर जाना चाहिए।"

"यह छोड़ो। देखा जाएगा। ठाकुर साहब, आप नाराज हैं?"

"नहीं, नाराज नहीं हूं। आपका मन आपका है, उसमें नाराज होने की मेरे लिए क्या बात है। एक अर्ज कर सकता हूं? पार्लियामेन्ट से आप अभी स्तीफा मत दीजिये और जाकर जमीन के साथ तजुर्बा कीजिए। जब तक आप तो तजुर्बा जारी रखिये और फिर चाहें तो पार्लियामेन्ट भी तर्क कर दीजिये। इसमें तो कुछ हरज नहीं है, क्यों भाभी जी?"

राजश्री कुछ नहीं बोली।

मैंने कहा—"क्यों राज, क्या सोचती हो?"

"मैं सोचती हूं कि ठाकुर साहब को अब बीच में कुछ नहीं कहना चाहिए।"

ठाकुर साहब उत्साह से बोले—"ठीक कहती हैं भाभी जी आप—कि मुझे कुछ नहीं कहना चाहिए। मैं कौन कि दखल दूं?"

राजश्री का रुख मुझे छू गया। उसका अनमनापन जैसे मुझ पर अभियोग डाल रहा हो। मैंने कहा—"ठाकुर साहब! आपकी सलाह ठीक है। यही होना चाहिए।"

ठाकुर ने मेरी ओर देखा। पूछा—"आप लोग नीरेश्वर के साथ रह सकेंगे फार्म पर?"

"क्यों नहीं रह सकेंगे ? जरूर यहीं रहेंगे। क्यों रानी ?"

"बीरेश्वर फिर यहां से भी चला न जाय ? '

'मेरी वजह से चला जाएगा ?

"हो सकता है।

ठाकुर साहब ने कहा—"मैं भी समझता हूं अलग इंतजाम ठीक होगा। बीरेश्वर बहुत खिंचा हुआ है आपसे।

"ठीक है, जैसा तुम्हारी भाभी कहें ठाकुर, वैसा ही ठीक है।"

कहकर मेरा चित्त विषाद से भर हो आया। खाने की मेज से मैं वहीं अपने शयनकक्ष में आ गया। ठाकुर अपनी जगह चले गये और रानी को भी कुछ काम पड़ गया होगा।

इस वृत्तान्त में मैं तीसरे पहर की बात भूल गया हूं। भानुप्रताप ठीक वक्त चाय मांगते हुए आ धमके थे। विस्मय हुआ देखकर कि वह दो पंक्तियां बी० पी० के हाथ की लिखी मेरे लिए लाए थे। पंक्तियां थीं कि मैं दुबारा स्थिति की अपेक्षा में पुनर्विचार करूंगा और निर्णय में जल्दी नहीं करूंगा।

मुझे प्रताप के हाथ उन पंक्तियों का आना अच्छा नहीं लगा। पूछा, "यह पुर्जा उन्होंने क्यूं तुम्हारे यहां भिजवाया था ?

'नहीं तो भई और क्या ? देखो मैं तुमसे कहता हूं कि अभी तो उनका इसरार है और वजह कि उसके पीछे हम लोगों का जोर है। लेकिन इस सब के साथ तुम समझ लो उन्होंने दूसरी तरफ भी बातचीत करने का तय कर लिया है।"

"तुमसे यह कह रहे थे ?"

"फिर वही बात। अरे भई, कहेंगे क्या ? बात साफ है।'

"तुम मिले थे उन्हें बाद में ?"

"मिला नहीं था तो क्या यों ही ?

"तो ये लाइन उन्होंने तभी तुम्हें दे दी होंगी ?'

"वह तो है ही और मैंने उन्हें भरोसा दिलाया है कि आप फिक्र न

करें, मैं प्रताप को संभाल लूंगा। देखना मेरी बात कच्ची न करना।"

मुझे अच्छा नहीं लगा। कहा "तो अभी यह क्या कह रहे थे कि दूसरे आदमी के हाथ भेजा है ?

"भई तुम भी बाल की खाल निकालते हो। भेजा या दिया, चीज तो सामने है उनके हाथ की लिखी हुई तुम्हारे—है कि नहीं ?

"प्रताप तुम इस मामले से बाहर ही आओ।

"कैसी बात कर रहे हो भई मैं बाहर हो जाऊं तो कहता हूं तुम्हारा नाम आगे लाने वाला दूसरा कोई नहीं है। और देख लो यह आखिरी कोशिश है। ठीक है तुम बाहर रहने की कहते हो बाहर हूं ही। लेकिन हमारा ख्याल था कि तुम अन्दर हो सकते थे और इससे ज्यादे इसमें तुम्हारा फायदा था। तो छोड़ो जाने दो। सच मैं इतना ही तो है कि तुम जल्दी फैसला नहीं करने वाले हो। इतना तो जाकर कह सकता हूं न कि ठीक है तुम जल्दी नहीं करोगे।

"मैं—"भाग जा रहा हूं !

"वैराग ? वैराग क्यों वन-जंगल क्यों नहीं जाते ? कि एकदम महर्षि बन जाओ और हम लोग तुम्हारे चरणों में गिरें। छोड़ो यार, मजाक छोड़ो। मैं जा रहा हूं कह दूंगा बी० पी० को कि सब ठीक है और अभी अपना रुख करें नहीं। अच्छा टा-टा !"

प्रताप चले गये और मेरे मन में हो गया कि वह मेरे और बी० पी० के बीच बिगाड़ करके छोड़ेंगे। मैंने इसलिए बी० पी० को सीधे एक लम्बा खत लिखा। उसमें अपने पिछले राजनीतिक इतिहास और ह्रास का हवाला देते हुए बताया कि प्रश्न मात्र व्यक्तियों का या कार्यक्रम की नीतियों और ब्यौरों का नहीं है। प्रश्न उससे गहरा और मौलिक है। गांधी के बाद हमने भौतिक पर ध्यान दिया है, नैतिक की तरफ दुर्लक्ष किया है। फिर भी हम नैतिक भाषा का उच्चार और घोष करते आये हैं। ऐसे बाहर और अन्दर की स्थितियों में फर्क पड़ा है और हमारी साख टूट रही है। अन्दर से देश के भीतर हमारे आपसी सम्बन्ध टूट रहे

है और अविश्वास और भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। जानता हूं मुझसे ज्यादा आपको इसकी चिन्ता है। लेकिन मुझे लगता है कि देश में बलिदान के मार्ग को फिर खोलना होगा। बलिदान अमुक प्रयोजन से नहीं पर जीवन नीति के ही तौर पर। यानि पद नहीं सीधे सेवा की तरफ बढ़ा जाय और पद के द्वारा सेवा के रिवाज को थोड़ा कम किया जाय। यह भी पत्र में लिखा कि भानुप्रताप यद्यपि आप से जुड़े हैं मेरे तो मित्र हैं ही। लेकिन इस बारे में आप मुझे अपने निकट और सुलभ समझें, भानुप्रताप पर निर्भर न बना दें।

पत्र लिखकर भी जाने मैं कैसा अनुभव कर रहा था। मन भानुप्रताप की बात पर जाकर खुश नहीं मानता था। दूसरी तरफ हमारे ठाकुर हैं। एक होशियार, दूसरा हार्दिक। ठाकुर के समक्ष मन मिलता नहीं खुलता है। "राजनीति भी अजब जाने-जाने से चलती है।

अब रात का साढ़े दस हो गया है। शायद मैं स्वार्थी हो रहा हूं। लेकिन अच्छा नहीं लगता यह कि राजश्री के पास ठाकुर से बताने को काफी बात हो सकती है मैं बस स्वीकृत और मान्य रह जाता हूं। पीरेश्वर की व्यवस्था बातचीत करके ठाकुर के साथ धीमे-धीमे तय कर ली गई। हो सकता था कि मैं विशेष सहायक न होता लेकिन उन दोनों के बीच क्या मैं तीसरा ही होने लायक था? मेरी ओर से कभी राजश्री पर विशेष ध्यान खर्च नहीं हुआ है न परिवार के दूसरे लोगों पर। लेकिन अब इस शयन कक्ष के अकेले में साढ़े दस बजने पर अच्छा नहीं लगता है यह कि पति का पत्नी को इतना कम ध्यान हो। किताब लेकर मैं बैठा रहा और इधर-उधर का जाने क्या-क्या सोचता रहा। मन में रह-रह कर चुभन होती थी। सब तरफ ध्यान जाता था पर चुभन का कांटा दूर नहीं होता था। ग्यारह हो गया, साढ़े ग्यारह भी बीत गया। मैंने घड़ी को बार-बार देखा। अपनी ओर से राजश्री के अब तक न आने को तरह-तरह का समर्थन दिया। शायद है कि मीना के विचार से

अब तक उसको दूर रखा हो। स्वीकार करना चाहिए कि मीना के सम्बन्ध में यद्यपि मैंने प्रगट चोरी नहीं रखी है पर वह सम्बन्ध सीधा है, पत्नी को मालूम नहीं है। मैं साफ-साफ समझ नहीं पाता हूँ। पति पत्नी का सम्बन्ध केन्द्र है। वह ध्रुव है कि जिसके आधार पर परिवार की एकता और समाज की मर्यादाशीलता खड़ी है। सही-गलत सब उसके सदर्भ से समझना चाहिए। लेकिन मैं नहीं जानता कि मीना को लेकर मुझमें क्या होता है। एक सात्विक स्फूर्ति-सी मिलती है। राजश्री को लेकर वह नहीं हो पाता। वह विवाहित है मैं विवाहित हूँ। इसी कारण उस सुख-सौहार्द को क्या निषिद्ध बना देना होगा ?

पौने बारह बजे राजश्री आई। मैं किताब और पढ़ने लगा। वह भी बात के लिए उत्सुक नहीं थी। एक ओर जाकर उसने कपड़े बदले और मैं किताब में रहा। जब वह तैयार थी कि बिस्तर में जाय और मैं सोफे में था और पढ़ रहा था। धीमे से बोली 'बत्ती अभी न करें ?

"नहीं।

"पौने बारह हो गया है।"

'होगा ही—तुम्हें क्या ?

"तो देख लो मैं सोती हूँ।

मैं चुप रहा और वह बिस्तर में पहुँच गई।

मैं और भी जोर-जोर से पढ़ने लगा। पर जोर-जोर अन्दर ही था, किताब तक नहीं पहुँचता था। किताब का पन्ना वहीं-का-वहीं रहा और मैं उधार की एकाग्रता के साथ स्त्री के हीन-बुद्धि होने का विचार करता रहा। खास कर पत्नी-वर्ग की स्त्री। इन प्रबुद्ध सात्विक विचारों में पाँच सात मिनट बीत गये होंगे। पन्ना खुला रहा और कमरे में सन्नाटा रहा। अच्छा था कि हाथ में किताब थी और उसे जोर से फेंक कर सहना मेरे द्वारा किया का अपमान नहीं किया जा सकता था। फिर यह भी बात थी कि किताब लगकर ज्यादे चोट नहीं दे सकती थी। कोई और भारी पत्थर-लोहे की चीज होती तो उसको फेंकना सार्थक हो भी सकता था।

इतने में देखता हूँ कि राजश्री पास ही खड़ी है। पूछ रही है—"नाराज हो?"

मैं चुप रहा और किताब में देखता रहा।

"आधी रात हो गई है, सोओगे नहीं?"

मैं ऐसे बैठा रहा कि आधी रात में कहीं सोया जाता है—या कि पढ़ा जाता है?

राजश्री ने बिना किसी झटके के किताब मेरे हाथों में से अलग कर दी। मैंने कहा "क्या है, तमीज नहीं है?"

कहकर ऊपर की तरफ देखा। मेरी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही होंगी। पर राजश्री मुस्करा रही थी। बाँकी चितवन थी उस मुस्कान में।

लेकिन मुझे हारना न था। जोर लगाकर कहा "अपना काम देखो और सोओ। मुझे पढ़ना है।"

राजश्री ने किताब रखी नहीं। दूर एक तरफ फर्श पर फेंक दी और मेरे दोनों हाथों को पकड़कर उसने मानो मुझे खींचकर उठाया।

मैं भारी भरकम आदमी हूँ और उस समय मन वजन से कम भारी न था। लेकिन उन हाथों में खिंचता उठता चला आया।

बोली "बत्ती कर दूँ?"

मैंने कहा "छोड़ो, इन कपड़ों सोऊँगा?"

राजश्री ने फौरन छोड़ दिया। कहा "अच्छा तो तुम बिस्तर पर आते रहना।"

उस समय राजश्री जो अनेक पुत्र-पुत्रियों की माता थी, जाने कैसे षोडशी हो गई। वह मीठे मुस्कराई और छोटे-छोटे कदमों से ऐसे बलखाती चाल से बिस्तर पर गई और मुझे देखती हुई ऐसे रजाई में दुबकी कि सब गुस्सा से काफूर हो गया। मैं पिघलकर हर तरफ से मोम हो आया।

मैंने कपड़े बदले, बत्ती की और बिस्तर में जा लेटा।

दो-तीन मिनट चुपचाप अलग-थलग होकर पड़ा रहा। तभी राजश्री

का एक हाथ बढ़कर आया। उसने मेरी बाँह को दबाया, कहा—सो गये ? अब तो नीलिमा आ गई है। बिगड़े क्यों हो, खुशी की बात है।

उसके स्वर की तरावट पर मालूम हुआ कि रात्रि भी नीलिमा के साथ अपना स्वीकार ही चाहती है, शायद नीला का बहिष्कार नहीं।

शायद—लेकिन ?

पाँच

फोन नहीं किया मीना को। दस बजे खुद ही पहुँच गया। यह इसलिये कि शायद हर साहब मिल जायें। अधिक आशा थी कि नहीं मिलेंगे। पर मैं मन को साफ रखना चाहता था। और खुश न हुआ कि हर मिल गये। जाने की जल्दी में थे। मीना के साथ ड्राइंग से गुजर रहे थे। बैठक ठीक दस बजे शुरू हो जाने वाली थी, अफसोस में थे कि कुछ मिनट अभी देर हो गई है।

चलते-चलते उन्होंने बताया कि इन्तजार न किया जाय, लंच नहीं है और डाय-पौन घंटे रुकने के बाद फिर बैठक होगी—पाँच बजे तक।

मीना ने कहा— 'तो मैं पाँच पर तुम्हें दफ्तर से ही लूँ?'

हर ने स्वीकार किया और बताया कि मीना कह रही थी कि मैं आने वाला हूँ। फिर अपने जाने की मजबूरी पर क्षमा माँगते हुए हाथ मिला कर वह चले गए।

अब मीना ने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया और हम लोग कमरे में आए।

अन्दर कदम रखते ही वह मेरी तरफ मुड़ी। दोनों हाथों से कन्धों के पास बाँहों पर से पकड़कर मुझे सामने लिया और जरा ऊपर-नीचे देखकर मानो मुझे नापती हुई बोली— 'तुम तो—वही हो!'

मीना अंग्रेजी में बोला करती है। अंग्रेजी उसकी मीठी भी होती है। ऐसा लगता है कि शरारत और शिष्टता का मेल जो उसकी अंग्रेजी

सिखा पाती है, सो शायद हिम्मत अदा नहीं कर सकती। एक साथ अजीब व्यंग्य और संतोष उसके स्वर में था।

"यानी—कुछ और होना चाहिए था?"

"नहीं तो क्या!"

"तुम तो नहीं बदली हो। जरा सर जरूर रही हो।"

"मैं सोचती थी, एकाध में तुम कुछ दूसरे दिखाई दोगे!"

"तो निराश तो नहीं हो रहीं तुम मुझ में?"

"नहीं बल्कि और विश्वस्त दीखते हो अपवस्त्र जरा भी नहीं!"

मैं कुछ बिगड़ा। बोला—"अपवस्त्र?"

"कह तो रही हूँ कि नहीं उल्टे दीखता है कुछ पा गए हो। छोड़ो आओ बैठें। क्या लोगे कॉफी या कुछ ठंडा?"

"कॉफी सुनो ग्यारह बजे तुम कहाँ जा रही हो?"

"कहीं नहीं।"

"तुमने कहा था न कि ग्यारह तक।"

उसने बटन दबाया। फोन में कहा—"हलो दो कॉफी।" "जी, कॉफी—दो" हाँ वह ग्यारह!

"कहीं जाना था?"

"हाँ जाना तो था।"

"जाना दूर हो तो साढ़े दस बजे चल देना चाहिए। यानी कॉफी के बाद मेरी छुट्टी।"

"हाँ जाना था और जरा दूर भी। खूबसूरत की बात थी। एक बार गई थी खूबसूरत जगह है।"

"वह खुशकिस्मत कौन है?"

"कोई है—शायद मैं हूँ!"

अजब चिढ़ी-सी आवाज़ थी। इतने में घंटी बजी और मालूम हुआ, ड्राइवर है गाड़ी आ गई है। नीला ने कहा—"ठीक है। तुम ऊपर आयेगा।"

इतने में काफी आई। तैयार करती हुई बोली—"ओह! तुम तो ब्लैक लेते हो। शुगर—आधी चम्मच? लो' लो फिक्र न करो, अभी देर है।"

मैंने बढ़ा हुआ सासर हाथ में ले लिया।

सोच रहा था कि देह में भरती जाती हुई मीता पहले से अच्छी लग रही है। जरा बाँह को दबाकर देखूँ, पूछूँ कि मीमिमा, तुम पर से उम्र क्या कपूर की तरह आकर उड़ जाती है? सिर्फ सुगंध छोड़ जाती है। अब जिस्म तुम्हारा गदराया जा रहा है। पर कुछ पूछना बताना कैसे हो सकता था। शायद यह सोचा भी नहीं जा सकता था। साढ़े दस बजे उसे जाना है। जाने किसके साथ या किसके पास जाना है।

इसी असमंजस में काफी के प्याले को हाथ में लेकर मैं थोड़ी देर उसे देखता रह गया।

उसने अपना प्याला भी तैयार किया और एक सिप लेने के बाद मुझे अनमना देखकर वह मुस्कराई। बोली—"साढ़े दस नहीं अब पौने ग्यारह पर निकलेंगे। हो जाने दो पाँच-सात मिनट की देर अगर होगी तो।

मैंने कहा—"सूरजकुंड दूर है!

'होने दो दूर।'

"क्या यह मुनासिब होगा कि कोई वहाँ पहुँचे और खाली राह देखे और"

मीता मुस्कराए जा रही थी। अब जरा सोच में पड़ती मालूम हुई। बोली—'हाँ मुनासिब तो नहीं होगा। अच्छा तो साढ़े दस ही बजे चला जाय—वक्त ज्यादा नहीं है—

"आज ही आ रही हो वापिस?

'अभी तो हाँ—बाकी परसों शाम को होगा। क्यार बस पता देखना। ओह अभी सात मिनट हैं। (तभी ड्राइवर आया) 'ओह तुम आ गया? देखो यह ऊपर सामान है। गाड़ी में रख के बंद करके

आमी हमको देगा और पीछे ख्याल रखेगा। हम देर से आने सकता है, तुम ख्याल रखेगा।"

ड्राइवर को साइड-रूम में सामान बताया। फिर मेरी ओर हलके बाहर आकर मीठी कहा—"माफ करना, जरा चेंज कर लूं।

कहकर वह साइड-रूम में ही चली गई। मुस्कराती गई थी और मैं उसका अर्थ नहीं पा रहा था। मीना कुछ अलग ही है। मानो उसके लिये कहीं रोक नहीं है। वह दबने में विश्वास नहीं करती दमन में भी नहीं करती। जीवन जैसे उसके लिए लहराता तत्त्व है। साथ वह भी लहराए रहना चाहती है। कुलीनता की उसमें कमी नहीं है न शिष्टाचार की। किन्तु उसके साथ यह सब कृत्रिम नहीं रहता अनायास हो जाता है। उसकी अकृत्रिमता को सामाजिक सद्व्यवहार दब नहीं पाता। जीवन में तैरती-सी चलती है और कहीं उसे निषेध ज्ञात नहीं होता। मानो कर्तव्य उसके लिए वह है जो उससे होता है। किसी 'चाहिए' का दबाव वह ताब नहीं लेती। मानो जो है वही उसे चाहिए।

मैं समझ नहीं पाता हूं कि मीना की शक्ति क्या है। पर शक्ति का अनुभव करता हूं। साथ होता हूं तो लगता है वातावरण उससे बनता है, मुझसे नहीं। परिस्थिति में जो मोड़ आता है उसमें आता है। विस्मय यह कि यह अनुभव उस समय मुझे अप्रिय भी नहीं होता। बाद में सोचना पड़ता है कि अप्रिय होना चाहिए था। अपने पुरुषोचित सम्मान-अभिमान का उसकी उपस्थिति में मुझे ध्यान नहीं रहता है जो रहना तो चाहिए।

मीना बदल के जिस रूप में आई, उससे विस्मय हुआ। एकदम सादा उसका परिधान था और आभूषण एक भी नहीं। बस गले में ऐसी सीपियों की माला थी जो चार-छः पैसे में आती होगी। यह रूप मैंने शायद ही पहले कभी उस पर देखा हो। बल्कि जरा पहले की बे-तैयार हालत इससे ज्यादा सजी मानी जा सकती थी। पर रूप वह उस पर फब रहा था। बड़ा भव्य मालूम होता था। आते ही बोली—"चलिए।

अपनी जगह से उठते हुए मैंने कहा—"यह क्या उपासिका बन आई हो ? कोई सन्त-सद्गुरु मिलने वाले हैं क्या ?"

"हो सकता है। आप कब तक की छुट्टी आये हैं ?"

"अभी तो जाऊंगा। बताओ तब अपना साथ हो सकता है ?

"साथ ही तो होगा सब।"

"वहां से आ जाओगी न तब तक ?'

"कहां से ?

"कुंड से।'

"क्या जरूरी है ?

"जरूरी है मानी ?

'मानी कुछ नहीं—खुलकर बातें खुले में होती हैं। बोलो, कहीं और चलें ओखला चलें ?

"लेकिन—"

"ओखला जगह बहुत आम बनी जा रही है। सूरज कुंड एकांत रहता है। जल्दी फैसला करके बताओ।"

मैंने फैसला करके नहीं बताया। कमरा बन्द करके हम बाहर की ओर चले। मैं सचमुच असमंजस में था। यह नहीं कि मेरे पास वक्त न था, पर उस वक्त के साथ कोई ऐसी स्वच्छता न यह मेरे मान को प्रिय न हो रहा था। कहा—"अभी तो मेरा जाना न हो सकेगा।"

"जी हां अभी नहीं तो जैसे कभी और रखा है हमारे पास कि जब जाना हो सकेगा! कहा तो है मैंने कि शाम हम वापस आ रहे हैं और—"

"लेकिन नीला!"

"जी हां नीला। उसे वहां कुंड में जाके डूबना है न कि अकेली जाएगी। तो जाने दीजिये। आइए वापस कमरे में चलें।"

"मगर यह गप क्या है नीला ?

"देखो तीन बरस बाद हम मिल रहे हैं। उस पर तुम चाहते हो बात गिरी-गिरी हो। मुझसे यह नहीं होगा। आप दीजिये विराम

नियम में और संयम में मुझे आकाश पसन्द है जो खुला है दिशाएं पसन्द हैं जो बुलाती हैं चारों तरफ से किसी तरफ से रोकती नहीं। मैं नहीं रहना चाहती कमरों में बक्सों में आदतों में। मैं अनन्त में रहना चाहती हूं। पर छोड़िए शब्द क्यों भाषा बड़ी छोटी पड़ती है—आप थके हैं न ?

"नीला !

"समय नहीं है न आपको ?"

"नहीं यह बात नहीं।

"जानती हूं यह बात नहीं है—फिर क्या है ?"

"कुछ नहीं।

"डरते हैं—अपने से ?

डरना नहीं चाहिये ?"

"नहीं ! कभी नहीं डरना नहीं चाहिये। पाप से डरा जाता है। इसलिए सिर्फ निडर है जिसे पाप नहीं छूता।

"नीला !

"छोड़िए, कभी तो अपने को भुला दीजिये। एक बार भूले थे ! दोनों हम भूले थे। वह क्षण क्या मर सकता है फिर—आपके लिए या मेरे लिए ? अमर वही होता है जहां आपा भूल जाता है। बहुत याद न रखिये अपने को या फर्ज को।

उसने मेरा हाथ थाम रखा था। लिफ्ट से बाहर आकर हम लाउंज पार कर रहे थे। मैंने उसके हाथ को दबाया कहा—"नहीं नीला ! अब नहीं।

सुनकर नीलिमा चलते-चलते एकाएक रुक आई। चेहरा उसका मानो पत्थर हो गया। उसने बांह न छोड़ रोका और मेरी आंखों में देखा। आंखों से उभारे जैसे दृष्टि न उसने पूछा—'यह 'अब' क्या नहीं ?

मैंने मानो दृढ़ बनकर कहा—"माफ करना मैं चल नहीं सकूंगा।"

वह अपना दर्द में दाब में हो गई थी। मानो हमारे बनने में

कोई व्याघात नहीं आया। उसने अरुण के उस भाव को संक्षिप्त करते हुए कहा— अच्छा अच्छा! और मुझे साथ लिए आगे बढ़ती चली गई।

पोर्टिको पर आकर बोली—"गाड़ी लाए हो अपनी?"

"नहीं! अपनी अब है कहाँ?"

"तो आओ। कहोगे तो जहाँ हुआ छोड़ दूँगी।"

चलते हुए हम गाड़ी पर आए। उसने चाबी से दरवाजा खोला और स्टीयरिंग पर बैठ गई। बराबर का दरवाजा खुलने पर पास में आ बैठा। गाड़ी स्टार्ट करने पर उसने धीमे से पूछा—"अखबार में जो खबरें निकली हैं कितनी सच हैं?"

"बोलो क्या पढ़ा है तुमने?"

"तुम अपनी कहो कि कितनी सच हो।"

"मुझे लगता है—उथल-पुथल न हो कहीं। शक्ति का संतुलन ऊपर अस्थिर हो गया है। तुम जानती हो दल-बदल मेरे बस का नहीं है। शायद उससे बात संभलेगी भी अब नहीं। आखिर टिकता है वह जो सच होता है, पायदार होता है। ऊपर का करतराव कायम नहीं रहता। मेरी उमर—तुम कितने की हो गई मीरा?"

"उमर—मुझे बयालीसवाँ लग गया।"

"मैं सीवन में आ गया हूँ। मुझे नहीं मालूम पुनर्जन्म होता है या नहीं! लेकिन लगता है कुछ होकर बीत जाता है कुछ रह भी जाता है। वह जो ऊपरी और बाहरी है उस पर मन को कब तक अटकाए रखा जा सकता है? बस इतना ही सच है।"

"यानी इन्कार किया जिसे वह ऊपरी है?"

"इन्कार करने की बात नहीं सिर्फ स्वीकार न करने की बात है।"

"भीतरी क्या है?"

"मालूम नहीं। शायद वह जिसमें—पैसा नहीं लगता!"

मीरा हँस आई। बोली— तुम पागल हो रहे हो! भला पैसा किसमें नहीं लगता?'

'यही सोच रहा हूं और लगता है सब में पैसा लगता है।"

खिलखिलाकर मीना ने कहा—"सोच कर नहीं पहुंचोगे नहीं। एक ही रास्ता है कि पैसे के बारे में सोचो ही नहीं। उसे खर्च किये जाओ। जरा वह ठहरेगा, कि उसके बारे में सोचना पड़ जायेगा। मैं यही करती हूं जरा नहीं सोचती पैसे के बारे में। बेदर्दी से खर्च करती हूं क्योंकि बड़ी खराब चीज है यह पैसा! मजबूर करता है कि उसके बारे में सोचो और सोचा कि फंसे। रुकना गलत है और तुम इसी चक्कर में आ गए हो। हां कहां तुम्हें पहुंचाना है बताओ। या—चल रहे हो?"

मैंने मीना को देखा। कहा—"तुम्हें अपना ख्याल नहीं होता मीना? अपनी उम्र का या आगे का?"

"ख्याल वालों ने कुछ पा लिया हो तो करूं भी मैं ख्याल। मैं तो देखती हूं खोना ही खोया है। तो चलो चलूं न?'

'रास्ते में कहते चलें लंच के लिए।'

'छोड़ो लंच। वहां आस-पास कुछ मिल नहीं जायेगा क्या? सिंघाड़े, शकरकन्द मूली कुछ तो मिलेगा ही।"

"इससे चलेगा तुम्हारा?

मेरा तो आज हवा से भी चल सकता है!—तुम लोग जो उद्धार चाहते हो अपनी पाबन्दियां छोड़ नहीं सकते। एक रोज उपवास ही सही।"

मैं इस प्रकरण को बढ़ाना नहीं चाहता हूं। सूरजकुंड पर आकर देखा कि सामान में बहुत कुछ है। दो मुड़ने वाली कुर्सियां तक हैं। फ्लास्क में काफी है और लंच का पूरा सरंजाम है। मैं इस सब के लिए कतई तैयार न था। पर तैयारी का प्रश्न ही न रह गया था। गाड़ी रोक कर उसने उस खंडहर में अपने लिए जगह छांटी कि जहां जरा ओट थी और धूप छनी आ सकती थी। कब्र पर करीब सन्नाटा ही था। उसने कुछ सामान मुझे दिया कुछ अपने हाथ में लिया और चाबी लगाकर गाड़ी को किनारे छोड़ दिया। एकान्त जगह पर आकर उसने कैनवास की दोनों कुर्सियां फैला दीं। सामान नीचे पटक दिया। कपड़े उतारने

गयी। अन्दर उसने बेदिंग सूट पहना हुआ था। आकर कुर्सी में फैल गई, कहा—"तुम भी कुर्सी ले लो। सूर्य-स्नान नहीं करोगे या कपड़े लादे रहोगे? कुर्सी की पीठ कर लो सूरज की तरफ।

धूप सचमुच तेज थी। मैंने कोट उतार दिया, कमीज के बटन ढीले किये और मैं भी कुर्सी पर लेट गया। कोट मैंने सिर पर ले लिया कि आँखें छाया में रहें।

नीला ने कहा—"अब कहो, जो तुम्हें कहना हो। पर सच बताओ। इस धूप में और खुले में और आजादी में तुम आदर्श की बात करना चाहोगे कि मन की बात करना चाहोगे?"

"तुम अगर थोड़ा चुप रह सकतीं नीला!

"यह तुम ठीक कहते हो। प्रकृति में आकर तर्क नहीं होना चाहिए। लेकिन कह सकते हो कि तुम्हारा मन तर्क नहीं कर रहा है अन्दर-ही अन्दर? उसी को बाहर खोल लाने को कहती हूँ जिससे कि इस मनस्व में सब शान्त हो जाये।

"मुझसे कहलाओ मत ज्यादे नीलिमा। यह सब तुम्हें बताना चाहिये था मुझे।

"क्यों? क्या ऐसा लग रहा है कि नीलिमा तुम्हें ठग लाई है!"

"पहले से तुमने यह तय किया हुआ था—मुझे बता देना चाहिये था।

"जब तुम्हारे काम का हर्ज हो रहा हो मुझे बता देना, दस मिनट में तुम्हें घर पहुँचा दूँगी। लेकिन तुम किसलिए रहना चाहते हो?

"मैं किसी भी लिये रहना चाहता हूँ!

"पूछ सकती हूँ यह आवेश किसलिए?"

"मुझे यह ढंग पसन्द नहीं।"

नीला हँसी। बोली—"यानी उपासिका के कपड़े पहन लूँ यह पसन्द है? वह तो पहनूँगी ही। लेकिन सूरज भी है और धूप बदन को छू जाए तो इसमें कोई खतरा नहीं है।'

"सच बताओ, तुम क्या चाहती हो ?"

"ऐसा लगता है तुम्हें कि मैं कुछ और चाहती हूँ ? जीने से कुछ और ? और जिलाने से कुछ और ?

"हाँ लगता है !

"मुझे नहीं मालूम था, साहब, कि तुम्हारा दिल इतना कमीना हो गया है !"

मैं चुप कर चौंका। मुझे यह आशा न थी। मैं अपने से झगड़ रहा था। उस पर आने के लिए मेरे मन में आरोप-अभियोग तनिक न था। लेकिन वह आवेश में बोली—

"तुम लोग समझते हो, सब तुम्हीं करते हो। ठीक है, बड़े साहब के लिए कुछ हुआ, और कुछ मौके बने। लेकिन ओहदों पर पहुँच कर तुम यह मत मान लेना कि तुम ज़िन्दगी के औज़ार नहीं हो, उसके मालिक हो। ज़िन्दगी अपने तरीक़ों से चलती है। तुम्हारी जगह कोई और हो सकता है। और बड़े साहब की और मेरी जगह पर कोई दूसरा हो सकता है। क्या तुम समझते हो कि तुमने एहसान किया है ? एहसान मैंने किया है कि तुमसे बात की है !"

"मीना !

"मैं नहीं समझती थी, तुम अपमान करोगे। मैं फिर कहती हूँ कि ज़िन्दगी हम सब के साथ खेल करती है। जो इसको खेल नहीं मान सकते हैं वे ही एक-दूसरे की शिकायत-आलोचना करते हैं। मैं समझती थी, तुम उससे बाहर होगे, और बिना लगाव के चीज़ों को देख सकते होगे। पर देखती हूँ कि तुम..."

यह बहुत हो रहा था। मैंने कहा, "मीना, मुझे तुमने गलत समझा। लेकिन गुमान रखने की तुम्हें भी ज़रूरत नहीं है। यह सब तमाशा किस लिए आखिर ?

मीना ने हँसकर कहा, "तुम्हारे झूठ ममत्व के लिए, और किसलिए ?"

मुझे सचमुच क्रोध हो आया।

कहा "मरज का इलाज तुमने बदन में समझ रखा है क्यों ?"

वह और भी हँस आई बोली "मरज और इलाज सब शरीर में होते हैं। बन्द में मरज खुले में इलाज।"

'इसीलिए अपने शरीर का तुम्हें गुमान है।

"हां इसीलिए। बुद्धि का गुमान तुम्हारी तरह मुझे तो नहीं हो सकता है। शरीर का ही हो सकता है।

"ये सब नहीं होगा नीला। मुझे तुम पहुंचा सकती हो ? '

"जरूर पहुंचा सकती हूं। कहकर वह मुस्कुराई और कुर्सी पर बाँहें पीछे करके उसने अंगड़ाई ली। इसमें टाँगें दोनों आगे को तन आईं और अंगड़ाई के बाद बदन शिथिल हो गया। उसके उठने और तैयार होने के कोई आसार नहीं दिखाई दिये। तो मैंने कहा 'उठी नहीं ? अभी चलना होगा।

उसी मुस्कान के साथ वह बोली "मैं सोचती थी खा-पीकर चला जाता। तुम भी उतने कुछ धूप और हवा ले लेते।

"तुम्हें शर्म नहीं है ?

"न नहीं है।"

कहती हुई वह खिलखिलाई। कहा "और तुम्हें भी उसकी जरूरत नहीं है। मेरे सामने तो बिलकुल नहीं है।

मैंने उठकर उसकी बांह को पकड़ा। उसकी नंगी त्वचा का स्पर्श मुझे और जड़ कर गया। बांह को झटके से खींचते हुए कहा "उठो और कपड़े पहनो।"

वह झटके के साथ उठ आई थी और मेरे बिलकुल सामने थी। बोली, "अभी तो मेरा विचार धूप सेंकने का था" कहा—और अजब चितवन से देखा।

"कोई धूप नहीं। चलो और मुझे पहुंचा के आओ।" और कहकर मैंने उसकी बांह को छोड़ दिया।

"नहीं चलोगी ?

अब उसकी मुस्कराहट गायब हो गई थी। बाँह की ऐंठन के साथ उसने जरा बल खाया था और उसकी आँखों में अपार विस्मय खीज आया था। विस्मय के साथ ही जाने कैसा एक धिक्कार था। उसने एक शब्द भी नहीं कहा, सिर्फ उन आँखों से देखा और मैंने उसके हाथ को छोड़ दिया। बाद भी वह तनिक नहीं बोली। सिर्फ गई, वही अपने सफेद कपड़े पहने, फिर जमीन पर बैठकर फ्लास्क खोला और प्याले में काफी उड़ेलकर मेरे आगे किया।

मैं देखता रह गया, प्याला ले न सका।

"लो काफी पी लो तो बस अभी चलती हूँ।"

"नहीं मुझे जरूरत नहीं है।"

"कह तो रही हूँ अभी चलती हूँ। लो।"

"तुम भी लोगी।"

"मैं—ले लूंगी।"

मुझ अब अपने पर खेद हो रहा था। लेकिन कोई उपाय न था, मैंने बड़े-बड़े काफी पीना शुरू किया और नीला ने भी अपने लिए कप बनाया। जरूर गाम को ही उसमें काफी डाली गई होगी क्योंकि जल्दी निबट कर उसने फैली कुर्सियों को तह किया और उठाकर चलने लगी। शेष सामान अभी वहां ही था मैंने कप को आधा छोड़ा और दौड़कर उसके हाथों से कुर्सियां छीन लीं। उसने कुर्सियां छिन जाने दीं बल्कि मेरे हाथ में कार की चाबी भी थमा दी। मैं बढ़ता आया और कार खोलकर कुर्सियां वहां जमा दीं। इतने में नीला आ गई वह सामान से लदी थी और मैंने फिर दौड़कर उसे हलका किया और वह कुछ न बोली। अन्त तक वह कुछ नहीं ही बोली।

मैं सोचता था घर के दरवाजे पर मुझे उतार कर सीधे वह भी अपने डेरे चली जायेगी। पर वह मुझसे भी आगे होकर घर में बढ़ती गई और ढूंढती हुई राजश्री के पास पहुंच गई। मैं बाहर की बैठक में था कि नीला के साथ राजश्री आईं, बोलीं, आ गये। मैं समझती थी यह

बिना सच के तुम्हें न भेजेगी, क्यों नीला ?"

"इन्हीं से पूछिये, अगर कसूर मेरा हो। बड़ी मुश्किल से एक कप काफी पिला सकी हूं।"

इतने में बिना जरूरत और बिना बुलाये ठाकुर महादेवसिंह बैठक में आ गए। उनकी मुद्रा देखकर मुझे डर लगा, इसलिए मैंने कहा, "नीलिमा देवी आप हमारे मित्र ठाकुर श्री महादेवसिंह हैं एम० एस० ए०।

नीलिमा ने कहा "नमस्ते।

ठाकुर महादेवसिंह सचमुच अपने ऊपर से काबू खो नहीं सके। नीला का नाम अवश्य जानते होंगे। राजश्री ने भी कुछ-न-कुछ बताया होगा। आते समय उनकी मुद्रा को देखकर आशंका होना स्वाभाविक था। लेकिन ठाकुर एकाएक नमस्ते सुनकर नीलिमा को कुछ देर मटके से देखते रहे। एकदम सफेद भूषा थी—और साज-सज्जा में हल्दी से रंगी छह पैसे की सिकियों की माला गले में थी।

उन्होंने कहा "नमस्ते। फिर मेरी ओर मुखातिब होकर बोले—"तुम्हें ख्याल रहा था सहाय कि मुझे आज आना है ?"

नीला ने कहा, "अच्छा मैं चलूं। नमस्ते ठाकुर साहब। नमस्ते राज भाभी माल संभाल रखिये अपना।"

राजश्री ने हंसकर कहा, "तुम इतना अपना अविश्वास न करो, नीला।"

नीलिमा ने कहा "अच्छा भाभी।"

अब ठाकुर भारी मन से बोले "सहाय यह औरत अब आगे कभी तुम्हारे घर में न आये सुनते हो ?'

मैं चुप रहा।

ठाकुर बोले 'सुना नहीं शायद तुमने।"

राजश्री बोली, "कितनी मासूम दिखती थी बिचारी, और ठाकुर तुम उस पर बिगड़ रहे हो।"

"हाँ बिगड़ रहा हूँ। वह आयेगी मगर तुम लोगों की यही कोठी रही। ठीक सोचा है भाभी जी इन्होंने कि यह—छोड़ रहे हैं।

'सही कहते हो ठाकुर, लेकिन मुन्सिफ न बना करो किसी के।'

'क्या कहा ?

'बस चुप रहो।"

राजश्री ने बीच में आकर कहा 'आइये ठाकुर साहब, आप आइये। छोड़िये इन्हें।

कहती हुई राजश्री ठाकुर को ले गई और मैं सामने सूने में देखता रहा।

छः

मानना होगा कि मैं अनमना था। नीला के सम्बन्ध में विजय की भावना का सहारा मेरे पास बिलकुल नहीं रह गया था। बल्कि ऐसा लगता था कि नीला के सामने मैंने अपने को हल्का बनाया है और उसने अपने को संतुलित और ऊँचे रखा है। यह सोचता था सोचकर अनुभव करता था कि मेरे अहं को काफी क्षति पहुँची है। मैंने शायद नीला को नीचा दिखाना चाहा था और इसी में मेरी अपनी नीचता प्रकट हो गई थी।

"क्यों क्या सोच रहे हो ऐसे ? नीला से कुछ बिगाड़ तो नहीं हुआ ?

मैं चौंका। मालूम होता था कि मुझे इस तरह आरामकुर्सी में आँखें बंद करके लेटे हुए वह कुछ देर से देखती रही है और अब सोच-समझ कर उसने यह सवाल पूछा है। मैंने कहा— 'नहीं नहीं !

"फिर किस ग़म में हो ?

"ग़म ? नहीं तो। ग़म क्या होता ?

"देखो नीलिमा हम तुम जैसी नहीं है। आज़ाद ख़याल है इसमें खोट का क्या समझें। लेकिन मैं तुमसे कहती हूँ कि वह तुम्हें कभी—भीख सीखना नहीं चाहेगी।"

"क्या मतलब तुम्हारा—भीख सीखना ? पागल तो नहीं हुई हो ?

"पागल नहीं तुमसे कहती हूँ कि उसके मन में खोट नहीं है। स्वारथ

भी नहीं है। वह इतनी ऊँचे दर्जे की है। नहीं तो यहाँ मिलने क्यों आती, सीधे अपने होटल नहीं आ सकती थी? और वैसी होती तो तुमको लेकर मुझ से खुला मज़ाक कर सकती थी?"

"बस हुआ राज! मुझे छोड़ो अपना काम देखो।

राजने उलट कुर्सी के पीछे आकर दोनों हाथ मेरे कन्धों पर रखे। ऐसे एक दो क्षण वह चुपचाप खड़ी रही। हाथ जैसे मुझे आश्वासन दे रहे थे और वह सुरक्षा की छाया की भाँति अपना आँचल मुझ पर किये थी। वे शब्द मेरे भीतर तक उतरते चले गए।

कुछ देर बाद राजश्री ने ठोडी से लेकर मेरा चेहरा ऊपर किया और तनिक देर मुझे देखती रही। फिर एकाएक झुककर उसने हल्के से मेरे माथे का चुम्बन लिया। कहा—"विश्वास करो मैं शक नहीं करती हूं।

मैंने उसे देखा नहीं। झटके से मैं कुर्सी पर सीधा हो आया और हाथ चोर सामने फेंककर कहा—"करना चाहिए शक। तुमने मुझे क्या समझ रखा है! देवता समझ रखा है?"

राज कुर्सी के पीछे थी। मैं बैठा सामने देख रहा था। राज ने सामने आने की ज़रूरत नहीं समझी। वहीं से बोली—"हाँ आदमी मैं देवता होता है। और पत्नी नहीं प्रेयसी उसे बनाती है। तुम अपने देवत्व से लड़ते क्यों हो? तुमको तृप्त और प्रसन्न पाते देखूं तो क्या इसमें मुझे प्रसन्नता न होगी? पर आज तुम वैसे नहीं दीखते हो। मैं नहीं मानती कभी नीलिमा की तरफ रही होगी। बीच में ज़रूर तुम्हीं उखड़ पड़े होगे।"

मैं कुर्सी से उठ आया और राजश्री की ओर मुड़कर डपटते हुए मैंने कहा—'जानती हो तुम क्या बक रही हो?

"बक नहीं रही। नीलिमा को मैं जानती हूं। वह मामूली औरत नहीं है। वह गुर अपने को गिरा नहीं सकती इसलिये पुरुष को भी गिरा नहीं सकती। तुम उसके बारे में निश्चिन्त रह सकते हो।"

मैंने और भी जोर से कहा—"बस, बकवास अपनी बन्द करो। सुन लिया, मीता तुम्हारी बेटी है। आगे और कुछ ?"

मुझे अपना रोष समझ न आ रहा था और राजश्री की सान्त्वना मुझे और बेधे जा रही थी।

वह बोली—"कैसे हो तुम नासमझ! आज वह शायद चली जाएगी। एक दिन को आई तुम्हें प्यार किया घूमने ले गई, साथ तुम्हें यहाँ लाई—फिर भी तुम रूठे हो और ऐंठे हो ? जाएगी तो क्या, यह अच्छा होगा कि तुम्हारे रूठने की याद लेकर जाए ?"

मैं सचमुच आपे से बाहर होने वाला था। मैंने कहा—"राज! अब आगे मैं बर्दाश्त नहीं करूँगा। बात की हद भी होती है कोई।"

राजश्री मुस्कराई नहीं। उसमें व्यंग्य तनिक न था। बोली—"मेरी एक बात मान सकोगे ?

मैं चुप रह गया। बोला नहीं।

"बोलो मानोगे ?"

"कहो—"

मेरा ख्याल है, तुम्हें मीता से बात कर लेनी चाहिए, फोन पर।

"क्यों ?'

"कुछ हर्ज है ?'

'जरूरत नहीं है।

"तो मैं यहाँ बुला लूँ ?

"नहीं।

'तुम्हारी तरफ से मैं उससे मिल आऊँ, तो ठीक होगा ?'

"मैं पूछता हूँ किसलिए यह सब तुम बोले जा रही हो राज ?'

"इसलिए कि मैं देख रही थी उसमें चोट है।

"उसने कुछ कहा था ?

'नहीं तो वह यहाँ आती नहीं।"

"सब तुम्हारा वहम है राज ! और अब उस बात को छोड़ो।"

"नहीं एक बार उसके आने से पहले तुम्हें मिल आना चाहिए।

"मैं नहीं जा सकता।

"तो देखो मुझे जाना पड़ेगा।'

"जाओ, जाओ सौ बार जाओ। मुझे छोड़ो।"

राजश्री ने आगे जिद न की। बोली—"देख लो, जैसा ठीक समझो। ठाकुर को छोड़ने जाओगे न स्टेशन ?

"मैं ?—चला जाऊंगा।

"नहीं हो तो मैं जा सकती हूं !

'नहीं ज्यादे ठीक होगा राज तुम्हीं छोड़ आना।

'तो उनकी जमीन पर अपने जाने की बात पक्की है ?

"और क्या पक्की ही समझो। तुम तो राजी हो ?

"—और यहां पार्लियामेन्ट में गैरहाजिर रहा करोगे ?

"कभी-कभार आ जाया करूंगा। काम तो कुछ है नहीं। 'तुम कब जा सकती हो ?

"तुम्हें नौकरों के भरोसे छोड़कर तो मैं जाना नहीं चाहती।"

'तो—ठीक है साथ ही चलेंगे। ठाकुर से लेकिन कह सब रखना/ इंतजाम के लिए।

"हां हां—मैंने तुमसे कहा नहीं कुंवर साहब का फोन था।

"कुंवर ? क्या कहते थे ?

'हो सकता है शाम को वह आ ही जाएं।

"आज शाम ?

"हां जाने क्या जरूरी काम बता रहे थे। उसी वजह से होटल में ठहरेंगे।"

मुझे सुनकर अच्छा नहीं लगा। कहा—"जरा ठाकुर साहब को बुलाना तो।

ठाकुर आए तो कुछ नहीं मालूम होते थे। बोले, "मुझे बुलाया था? कहो।

"बैठो भी पहले।" मैंने कहा। "हाँ, वीरेश्वर कैसे चल रहा है फ़ार्म पर?"

"क्यों? ठीक चल रहा है। मैंने कह तो दिया था कि तुम्हें फ़िकर नहीं करनी है अब उसकी।"

"हाँ, वही मैं सोच रहा था कि कुंवर के साथ इंडस्ट्री में उसे लगाने की बात नहीं आनी चाहिए।"

"क्यों? उसका मन वहाँ लगे तो क्या हर्ज है? सच बात यह है सहाय, कि तुम जहाँ हो वहाँ नीत की भाषा और नीत का बाना चल सकता है। वीरेश्वर का मन अगर नहीं चाहता है खेतक बनना तो सब की बातों को उस पर थोपने की ज़रूरत क्या है। आदमी जमता है और फलता है तो आप ही बन जाता है। उससे पहले मन में उठने-बैठने की चाह रहती ही है और वीरेश्वर कोई औरों से अलग नहीं है। तुम हमेशा अपनी मिसाल देने लग जाते हो। मैं तो सोचता हूँ कुंवर के साथ होकर एक बार चल निकलेगा तो कहा नहीं जा सकता कि वह कहाँ तक पहुँचेगा।"

"नहीं, मुझे इंडस्ट्री-विडस्ट्री पसन्द नहीं है।"

"आपकी पसन्द का सवाल कहाँ है? हमेशा आपकी ही पसन्द!"

"नहीं ठाकुर, उसके लिए फ़ार्म ठीक रहेगा और तुम्हारा मन साथ है। तुम तो हो साफ़ हो। इंडस्ट्री से आदमी चालाक बनता है। यही तो फ़र्क होता है देहात और शहर का। देखो ठाकुर, वीरेश्वर तुम्हारे पास रहेगा। कुंवर के पास उसे जाने न देना।"

ठाकुर ने विस्मय से मुझे देखा। कहा, "क्या कह रहे हो यह! मैं तो बल्कि चाहता था कि कुंवर से जिक्र करूँ। लेकिन मैंने देखा कि वह अपनी स्कीमों में है, किसी भी और की उन्हें सुध नहीं है। मुझे तो ख्याल था कि उन्हें वीरेश्वर का ख्याल होगा।"

तुम ठीक कहते हो ठाकुर। क्यास नहीं है और इसीलिए मैं कहता हूं कि बीरेश्वर की नहीं अगर कुंवर उसे लेंगे तो किसी और ही खातिर लेंगे। मुझे यह कांय-फेर पसन्द नहीं है।'

"अच्छा अच्छा। तुम फिकर न करो। लेकिन बीरेश्वर का रास्ता आगे तुम बनाने वाले हो यह भी दिमाग से निकाल दो। तुमने उस पर उम्मीदें बांधीं चाहा कि जो आदर्श तुम पूरे नहीं कर सके वह करेगा। और इस तरह ऊपर से उसे लादकर मालूम नहीं तुमने अपने लिए उसमें कितनी चिढ़ पैदा कर दी है। छोड़ो यह कहो कि तुम्हारा पक्का है ? मैं तो कहूंगा कि फिर सोच लो। धोलिया आकर यहां गांव-देहात में चाहे जितने दिन रहो तकलीफ तुम्हें बिल्कुल न होगी। लेकिन इधर से मुंह मोड़ो मत। एक बात पूछूं ? वह औरत कौन थी ?"

"छोड़ो उसे। होगी जो होगी। राम ने कुछ बताया तो होगा। लेकिन ठाकुर, मेरा मन भर गया है इस चक्कर से।

"यह तो ठीक है। लेकिन उस चक्कर से भी एक दिन मन भर जाएगा। धरम-करम से मन का इलाज नहीं होता है। हाथ में आए काम से बचने से नहीं चलता है भाई। मन की ऐसी आदत बुरी होती है यह जानने की। नहीं राम भाभी ने तो मुझे ज्यादे नहीं बताया उस औरत के बारे में।

'उनका नाम नीलिमा पर है। भाला खानदान की है और ऊंची सोसाइटी में रहती है।"

'तुमसे क्या वास्ता है ?

'यहां नहीं रहती दिल्ली में। बम्बई रहती है। वास्ता खास नहीं है। राम कहां गई ?"

'ठीक है, मैं ज्यादे नहीं पूछूंगा। देखो बीरेश्वर की तरफ से बेफिकर रहो। मामला तो आएगा नहीं वह कुंवर की तरफ। कुंवर के लिए उसके मन में प्यार है। लेकिन आए तो तुम्हारी बला से। मैं समझता हूं तुम जाओगे नहीं कोई पन्द्रह-एक दिन में ?"

"हाँ, पहले ज़रूर दूँगा।'

लेकिन ठाकुर ने यह शायद सुना भी न था। वह जा चुके थे। मैं अब अकेला था और नीला के बारे में सोच निकला था। क्षणिक ठहरकर मैंने कागज़ खींचा और अंग्रेजी में लिखा "मैंने शायद अपने व्यवहार से तुम्हें चोट पहुँचाई है प्रिय। मुझे खेद है। आज तुम न आईं तो मैं मिलूँगा।' कागज़ को लिफ़ाफ़े में रखकर मैंने बन्द किया और ऊपर नाम और होटल का पता लिख दिया। इसी समय राज ने आकर बताया कि आपसे फ़ोन पर नीला है। बात कर लो।

"उसने किया था फ़ोन ?

"नहीं मैंने मिलाया था।

"लो यह ख़त चपरासी के हाथ भिजवा दो। मैं सुन लेता हूँ फ़ोन।'

एक क्षण मैं ठिठका और देखा कि लिफ़ाफ़े पर कुछ देर राज नीला का नाम पढ़ती रह गई है। उसने फिर चपरासी के लिए घंटी बजाई। और मैं फ़ोन पर आ गया।

नीला कह रही थी "आपने मुझे याद किया था कहिये।

मैंने ! "अभी एक ख़त भिजवाया है, तुम्हारे पास।"

'कहिए ?

"सवेरे मेरा व्यवहार ठीक नहीं रहा। विचार न करना उसका।"

"हाँ आपको तब क्या हो गया था ?

'मालूम नहीं जाने क्यों मैं भड़क गया!'

नीला उधर से हँसी "वेडिंग सूट का तो प्रताप नहीं था ?"

"वह भी हो सकता है। लेकिन पहले ही दिन तुम सूटकेस अपने का प्रस्ताव मेरे सामने रख सकती थी। जिस ढंग से आना हुआ वह सही नहीं था।"

'सही! और नीला फिर हँसी। क्यों, सरप्राइज़ेज़ आपको पसन्द नहीं हैं! मुझे बाक़ायदगी पसन्द नहीं है। चलिये पतन से आपने अपने को बचा लिया!

"यह क्या बक रही हो मीता !'

'और नहीं तो आप किससे बिगड़े थे ? अपने पतन से ही तो !"

यह बार 'आप' क्या चल रहा है मीता ? कह रहा हूं मुझे दुःख है और तुम बनाये ही जा रही हो। मुझे मालूम हुआ कि पाप बा रही हो। या नहीं ?

"पांच बजे के बाद मालूम होगा। मैं बधाई देती हूं आपको कि आप सभ्य बन रहे हैं।

"फिर वही !

'तो सच न कहलाओ। मुझे नहीं मालूम था कि तुम कायर निकलोगे। जो स्त्री से अपने को बचाता है, वह सच से अपने को बचाता है। स्त्री झूठ नहीं है और पुरुष के लिए सच की चुनौती स्त्री के रूप में आती है। मेरा शरीर क्या मेरा अपना नहीं है। क्या मैं उसके साथ सहज नहीं हो सकती ? सुमेरनाथ झूठ नहीं था उसकी जगह पूरा प्रकृतिस्नान भी हो सकता था। क्यों क्या मुझे इसका हक नहीं है ? किसी का मन डोलता है क्या इसीलिए मेरा हक कम हो जाता है ? देखो, बहाय तुम लोग इज्जतों में और वफा में यह डर वाले भिन्न-भिन्न स्वर्ण तारों को अपने साथ लपेट लेते हो और उनमें गौरव मानते हो। यह सब तुम लोगों की झूठी सभ्यता है ढकोसला है। फिर कहते हो हम सच को पाना चाहते हैं। तुम्हारा सच कपड़ों में है लिबास में है और ऊंचाई से डरने में है। तुम लोगों ने "

"देखा मीता ! हां बताओ कि हम लोगों ने और क्या सितम ढा रखा है ?"

"तुम लोगों ने औरत को गुड़िया बना रखा है।

टेलीफोन पर हंसी का वह उसका रोष मुझे अच्छा लगा। उस रोष से मेरा गिल्ट भाव दूर हो गया था। मैंने कहा— 'गुड़िया कभी अपनी तो बहुत अच्छी है !'

"बस तुम्हारे अच्छे समझे के लिए ही तो औरत को होना है।

गुड़िया हो तो गुड़िया। कुछ और उसका रूप आ जाये तो बस। चुप रही!"

"अच्छा—यह हो गया। अब बताओ, कि नाराज तो नहीं हो तुम मुझसे?"

"तुमसे? तुम अकेले से क्या हूंगी। लेकिन तुम व्यवस्थापकों की बिरादरी से जरूर नाराज हूं। तुम लोग आदि शक्ति में अविश्वास करते हो और अपने नियम कानूनों में विश्वास करने लग जाते हो। कभी तो अपने को उस शक्ति के हाथों में छोड़ा करो जो आदिम और सनातन है और जिसके अलावा कोई दूसरा सच नहीं है। क्यों तुम लोग इंतजाम पसन्द करते हो। क्यों प्रकृति के सत्य से बचते हो और संस्कृति का वेष्टन उस पर लपेटते हो।

"क्या कर रही हो नीला कल के लिए कुछ बाकी नहीं छोड़ोगी? अब पीछे आई खड़ी है सिस्टर कब तक सिखाओगी?"

एकदम नीला का स्वर नीचे आ गया। धीमे से बोली "बड़े वैसे हो। बताया क्यों नहीं कि पास आयी है!'

"ऐसी कोई तो है जिससे तुम डरती हो। राज लेना फोन। नीला बहुत बड़-बड़ के जान रही थी। जरा मुन्ना-मुन्नू के ठीक कर देना।"

राज ने फोन हाथ में लेकर हंस कर कहा "नीला! हमारे श्रीमान् जी को क्या डांट-डपट रही थी?

"मुझसे कह रहे थे, माफी मांग रहे थे। यह उनकी हिम्मत! बताइये फिर डांटूंगी नहीं?"

"माफी किस बात की?

"उन्हीं से पूछिए किस बात की माफी! कह हैं उन्हें अधिकार है। फिर यह प्रश्न बनता क्या?

"ठीक कहती हो नीला। इधर छोटा बनने का इन्हें मोह होता जा रहा है। प्रतिक्रिया होगी अपने अभिमान की। लेकिन तुम फिक्र न करो। छोटे यह नहीं हो सकते। बड़े भी नहीं छोटे होते हैं।

मैं बराबर कुर्सी में बैठ गया था। राज वही बात कर रही थी। मुझे इन दोनों की बातों में बड़ा रस आ रहा था। जाने कैसे मीता की आवाज भी शब्दों को स्पष्ट अर्थ दे जाती थी। शायद कुछ अनुमान भी इसमें मदद करता हो।

मीता बोली—'सच बताऊं राज भाभी। तुमने अब तक इनमें स्त्री के शरीर का डर क्यों रहने दिया है? डरते खुद हैं, माफी मुझसे मांगते हैं।

'छोड़ो मीता! तुम भी अपने शरीर को कब तक कसौटी बनाए रखोगी कि परख के पुरुष को पास-फेल किया करो!

मीता हंसी। बोली—'नहीं भाभी। तुम्हें इनमें से डर निकालना होगा।

राज ने कहा—"तुम यह जिम्मा ले बैठी हो तो मेरे लिये क्या करने को रह जाता है, मीतिमा? लेकिन स्त्री को अपने शरीर के भरोसे नहीं रहना चाहिए। ऐसे मामले दुर्गति हो सकती है। सुनो, आज तुम दोनों हमारे यहां ही क्यों न खाना खाओ।

"हो तो सकता है लेकिन इस बारे में उनसे पूछना होगा।

'तुम्हारा तो पक्का है न? वह आ न सकें तो तुम अकेली ही सही।"

'मालूम नहीं उन्होंने तो शाम के लिए कहीं मेरे साथ का तय तो नहीं कर लिया।

'उनके आते ही मुझे बताना अच्छा?

'अच्छा!

राज ने फोन बन्द किया और मुस्करा कर मेरी ओर देखा। मैंने कहा—"उन्हें घर पर क्यों बुला रही हो?"

"तुम्हारी वजह से। मीता को अपने से दूर रखने की कोशिश तुम्हारी ठीक नहीं है सिर्फ ढोंग है।

"लेकिन वह विवाहित में हैं। वह फायदा उठाना चाहते हैं।"

"क्या बुरा करते हैं वह अगर फायदा उठाना ही चाहते हैं। बिजनिस किसी को तो करना है और फायदे के लिए वह किया जाता है। या तो बिजनिस को खतम कर दो, नहीं तो फायदे की सोचने में कुछ हर्ज नहीं है। मुनासिब जो हो वह तुम कर सकते हो ना-मुनासिब की कोई मजबूरी नहीं है। नाहक संशय रख कर व्यवहार करने की क्या जरूरत है। फिर पर अब तुम किसी पद पर तो हो नहीं।"

"तो भी अपने सामाजिक सम्बन्धों का हमें ध्यान रखना चाहिए। ताकि आग उलझन न पड़े।

'हम कौन होते हैं कि जो लोगों में अच्छे-बुरे का फर्क डालें? मीरा की तरफ तुम्हारा फर्ज है और यह अलग बात है कि और सम्बन्ध रख सकते हो सामाजिक बनाना चाहते हो। तो नहीं बुलाना है उन लोगों को?"

फिर जो जैसा तुम चाहो।"

"पांच बजे के बाद फोन करके देखूंगी और तुम्हें बताऊंगी—ठाकुर साहब न जरूरी ऐसी क्या बात थी?"

"कुछ नहीं। वीरेश्वर को मैं नहीं चाहता कि कुंवर खींचे। उसका ठाकुर के साथ ही रहना ठीक है।

"क्यों हर्ज क्या है?

"तुम दोनों एक स्वर में बोलते हो क्या! ठाकुर भी कह रहे थे हर्ज क्या है। हर्ज यह है कि कुंवर की निगाह हम पर है, वीरेश्वर पर नहीं। समझी यह हर्ज है।

"निगाह होने दो तुम तो छोड़-छाड़ कर गांव में बैठने जा रहे हो। तुम्हारे नाम को अब क्या खतरा है। मैं भी सोचती हूं कि अगर उद्योग व्यापार के काम में जाकर वीरेश्वर का मन लगे तो अच्छा ही है।

"तुम सोच कर सकते हो अपने जी की। मैंने अपनी राय दे दी है।"

'हां तुम यह फिकर छोड़ दो।

मैं कुर्सी पर ही था। राजश्री खड़ी थी और यह कहकर वह जाने

गयी। मैं किस तरह धीरे-धीरे परिवार के सुख के लिए प्रभावहीन बनता जा रहा हूं यह अनुभव मेरे भीतर बिंधता जा रहा था। इस पर मानो मैंने घर से खुलकर बाहर हो रहना चाहा। अनुभव हुआ कि घर और बाहर सब ही को हैं और पुरुष का क्षेत्र बाहर है। वहीं उसके लिए आवाहन है वहीं आश्वासन। जो घर में अपने को बंधन में पाता हो, बाहर वही खुल जाता है। तब जैसे मुझे याद हुआ कि पारिवारिक भी कैसे सामाजिक में बाधा रूप हो सकता है। जिसे सार्वजनीन बनना हो उसे घर-बाहर के सम्बन्ध से सचमुच मुक्त ही होना होगा।

मैं कहां हूं? मालूम होता है कहीं भी नहीं हूं। अनिश्चय में हूं और अधर में हूं। पक्षी उड़ते हैं, वृक्ष जड़ें डालकर अपनी एक जगह खड़े रहते हैं। आदमी घर बनाता है इधर-उधर भी चलता-फिरता है! घोंसले की तरह उसका घर एक नहीं हो सकता। मालूम होता है कि उत्कट जीवन उतना ही गतिमय होगा। स्थितिनिष्ठ शायद उस जकड़ में जकड़ता जायगा। लगता है स्थिति को राजश्री के निर्णय पर छोड़ देना चाहिए और अपने लिए मुझे गति का ही ध्यान रखना चाहिए। विचार की इस संगति में मुझे फिर गीता का ध्यान आया और उसके स्वभाव के प्रति धीमे एक स्पृहा-सी मन में उत्पन्न हुई। मानो वह है जो अच्छी नहीं है। सच्चा जीवन है और सहधर्मी है।

घड़ी में अभी सवा चार बजा है। पार्लियामेन्ट की बैठक के बिना बदन भारी हुआ लगता है। मैंने किताब ली और दिवान पर जा लेटा। फिर पढ़ते-पढ़ते जाने धीरे से आंखों पर कब नींद आ गई।

राजश्री ने जगाया तब पांच बीस हो गया था। बताया कि नीलिमा आ नहीं सकेगी। लेकिन तुम उसके साथ होटल में डिनर ले रहे हो। मैंने तय कर दिया है।

'और तुम?'

'मुझे ठाकुर साहब को पहुंचाने जाना है न। सवा नौ पर ट्रेन है।

"यह तुमने ठीक नहीं किया !"

"लेकिन अब कुछ किया नहीं जा सकता । हर लोग होंगे भी नहीं इस जगह पर कि कोशिश करूं । चले जाना क्या बात है ऐसी ?

मैंने राजश्री को देखा । उसकी आंखों में तनिक अभियोग नहीं था । स्वच्छ विश्वस्त उसकी मुद्रा थी । मैंने कहा "राजश्री तुम मुझे क्यों देना चाहती हो ?

"पकड़ रख कर तुम्हें पा जाऊंगी यह तो कहीं तुम कहना नहीं चाहते ? जितना तुमको स्वतन्त्र रख सकूंगी, उतने ही तुम मेरे होगे । यह मैं अनुभव से जान गई हूं ।

मैंने कहा "राज !"

उसने कहा "बस" और फिर एक लिफाफा हाथ में दिया । उस फंक्शन में मेरी अध्यक्षता थी । साढ़े छह का समय था ।

राजश्री ने पूछा "जाना है न इसमें ?"

"जाना तो है । कुंवर का प्लेन कब आता है ?

"शाम को सात-आठ के बीच में कभी पहुंचता होगा । लेकिन वह तो होटल में ठहर रहे हैं । उनसे सवेरे मिलने आने को कहा है । तो तुम तैयार होओ वक्त ज्यादा नहीं है । फंक्शन से देखो वापिस यहीं आना । ठाकुर को जाना है ।

मैं उठा और तैयारी में लग गया । राज कुछ देर कमरे में फैली हुई चीजों को सम्भालती रही । फिर मानो अथाह निगाह से मुझे देखती हुई वह चली गई ।

मैं अपने को क्षमा नहीं कर सकता हूं । फंक्शन में देर लगती गई और मैं विवश बना बैठा रहा । अध्यक्षता में यही दोष है । घर आया तो ठाकुर जा चुके थे । स्टेशन पर जाकर दुआ-सलाम का ही समय मिल पाया ।

राजश्री एक शब्द नहीं बोली लेकिन उसकी निगाह में से शिकायत

झाँक रही थी। अन्त में उसने कहा "वक्त हो रहा है। तुम्हें डिनर पर भी जाना है।'

मैंने कहा 'जाता रहूँगा। दस मिनट बाद सही।"

ठाकुर ने कहा "नहीं साहब तकल्लुफ की क्या बात है। तुम्हें वक्त पर पहुँचना चाहिए।'

मैंने कहा "यह कैसे हो सकता है भई।

ठाकुर बोले तो भाभी जी आप भी जाइये। आराम से मैं बैठ तो गया ही हूँ और क्या चाहिए?'

रजनी ने आपत्ति न की हम दोनों ने ठाकुर को नमस्कार किया और वापिस चले आये। रजनी कार में गुम बनी रही।

घर आकर बोली 'मैं मैं बस पाँच मिनट हूँ। तुम्हें उतरने की जरूरत नहीं है। कहकर सीधी अन्दर बढ़ती चली गई।

यह मुझे अच्छा नहीं लगा। मैंने भी ड्राइवर को एकदम गाड़ी चलाने के लिए कह दिया। सोचा कि यह भी कोई तरीका है।

होटल के डाइनिंग रूम में देखा कि मेजें हमारी दो हैं। पर साहब के साथ कोई विदेशी मेहमान हैं और हम दो अलग मेज पर हैं।

मेरा मन स्वस्थ नहीं था। पत्नी को पत्र बात पर जिद कर जाने का जो अधिकार मिला हुआ होता है—पति की हैसियत से मैं उसी सम्बन्ध में अप्रिय-सा कुछ सोच रहा था। अच्छा हुआ कि मैं घर से दूर हूँ और लाचार हूँ।

"मालूम होता है, आपकी नाराजगी दूर नहीं हुई।

मैंने कहा "मीना, कभी अपने और घर की तरफ के फर्ज में तुम्हारे साथ अनबन नहीं हो जाती है?'

"नहीं फर्ज सब अपनी तरफ होता है। उसका प्लूरल नहीं होता कि अनबन का सवाल हो।

"बवाल मेरे लिए तो बन ही जाता है अक्सर बन जाता है।

"राजश्री भाभी जैसी पत्नी के रहते भी मन जाता है सवाल ? वो गलती तुम्हारी है।

मैं इसका उत्तर नहीं दे पाया। कारण, नीलिमा की कुर्सी के पीछे तमारा आ खड़ी हुई थी और आकर हाथ जोड़कर उसने कहा था, "नमस्ते।" उसके पीछे धीमी चाल से चलते कुंवर आ गये थे। जिन्होंने बोलकर नहीं सिर्फ हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

मैंने कहा "आओ आओ। यह बराबर से कुर्सी ले लो। नीलिमा देवी—यह हमारे कुंवर हैं, और यह है तमारा।"

कुंवर ने कहा तकलीफ न कीजिये। हमारी मेज उधर लगी है।

तमारा नीलिमा से हाथ मिला कर अंग्रेजी में बात करने लग गई थी।

कुंवर ने कहा "आज्ञा दीजिये डिनर के बाद मिलेंगे। चलो तमारा।

"तुम चलो मैं आती हूं।

कुंवर रुके नहीं तख्त से चले गये और तमारा मुझ से बोली—"होटल की खुश किस्मती है कि आज आप भी यहां हैं। नीलिमा देवी आपका धन्यवाद।"

नीलिमा अपनी तरफ से चुप थी और यह उचित था। तमारा ही उससे बोले जा रही थी। अन्त में उसने कहा—

"मैं हुक्म तो नहीं कर रही हूं। आप डिनर के बाद क्या कुंवर साहब के कमरे में आयेंगे ?"

मैंने कहा, "कुंवर तुम्हारी राह देख रहे हैं तमारा।

"अच्छा नीलिमा देवी, बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर। नमस्ते, सहाय साहब।

जाने पर नीलिमा ने धीमे से पूछा "यह कौन है ?"

"तमारा है।"

"है कौन ?" पूछते हुए वह मुस्कराई।

मैंने भी मुस्कराकर कहा "देखती तो हो भो सामने है।"

"हां देखती हूं। और मुझे बहुत बहुत खुशी है कि तुम अभी इस क़दर हरे हो। इसी बात पर लो यह जाम लो!—अरे ओ मैं भूली। तुम तो जाहिद हो!

और कहकर वह घुंघरुओं से निकलती-सी हंसी हंसी।

सात

हल्के-हल्के घुंघरू बजने की-सी वह हंसी—क्या मुझे तोड़ने के लिए थी ? मेरी तरफ बढ़ा जाम खिंच कर अब मीता के हाथ में सूना-सा थमा रह गया था। उसने उसे ऊपर न लाने की चेष्टा नहीं की। वह मुझे देख रही थी—जैसे दृष्टि में तरल करुणा हो।

मैंने साथ देने के लिए जग फल का रस लिया और गिलास को उसके जाम के साथ ऊंचे उठाकर टकराया। पर उसकी मुद्रा से स्पष्ट था कि नहीं इतने से मीनता के स्तर तक उठना न हो सकेगा। कुछ देर बाद बोली "अपने को वंचित रखते हो फिर उस पर गर्व मानते हो। इसको मैं तो—असाम्य कहूंगी।"

मुस्कराने में उसकी आंखें तनिक छोटी हो आईं और उसमें मधु आ भरा। मधु में जैसे कुछ तिक्त भी हो।

मैं चुपचाप उसे देखता रहा। बोली— क्या बताया था नाम ?—तमाल ? मैंने बधाई दी थी कि तुम अब भी हरियाले हो। फिर निषेध—"

मैंने धीमे से कहा "निषेध नहीं पर मेरी वजह से तुम परहेज में न पड़ना। तुम्हें आदत है, मुझे नहीं है। बस इतनी-सी बात है।

"नहीं इतनी बात नहीं है।" मीनिमा ने कहा बात यह है कि इसे 'स्प्रिट' कहते हैं। तुम स्पिरिट नहीं पकड़ना चाहते हो। ठीक है, रखो पकड़ अपने पास। लेकिन मुझे तुम्हारे बराबर से मगर भिन्न

मैंने भी मुस्कराकर कहा "देखती तो हो जो सामने है।

'हां देखती हूं। और मुझे बहुत बहुत खुशी है कि तुम अभी इस कदर हरे हो। इसी नाम पर लो, यह जाम लो!—अरे ओ मैं भूली। तुम तो जाहिद हो!"

और कहकर वह घुंघरुओं से निकलती-सी हंसी हंसी।

सात

हल्के-हल्के घुंघरू बजने की-सी वह हंसी—क्या मुझे तोड़ने के लिए थी ? मेरी तरफ बढ़ा जाम खिंच कर अब नीता के हाथ में सूना-सा थमा रह गया था। उसने उसे ऊपर ले जाने की चेष्टा नहीं की। वह मुझे देख रही थी—जैसे दृष्टि में तरल करुणा हो।

मैंने साथ देने के लिए जग भर का रस लिया और गिलास को उसके जाम के साथ ऊपर उठाकर टकराया। पर उसकी मुद्रा से स्पष्ट था कि नहीं उठने से मीनता के स्तर तक उठना न हो सकेगा। कुछ देर बाद बोली, "मन को बंधित रखते हो फिर उस पर बस मानते हो। इसको मैं दासता—दास्य कहूंगी।"

मुस्कराने में उसकी आंखें तनिक छोटी हो आईं और उनमें मधु का भराव। मधु में जैसे कुछ तिक्त भी हो।

मैं लगातार उसे देखता रहा। बोली—"क्या बताया था नाम ?—ज़फ़ार? मैंने बधाई दी थी कि तुम अब भी हरियाले हो। फिर निराश—"

मैंने धीरे से कहा, "निषेध नहीं पर मेरी वजह से तुम पसोपेश में न पड़ना। तुम्हें आनन्द है, मुझे नहीं है। बस इतनी-सी बात है।"

"नहीं इतनी बात नहीं है।" नीलिमा ने कहा, "बात यह है कि इसे निर्लिप्त कहते हैं। तुम निर्लिप्त नहीं रहना चाहते हो। ठीक है, क्या काम इस बात। लेकिन मुझे तुम्हारे बराबर से अगर सिर्फ

चला जाए तो देख कर उसे भुलना मत। जाहिर है यही डर रहता है, मगर भगने का डर।"

और मुस्कराहट उसकी हँसी बनने को हुई।

मैंने कहा "मीना तुममें स्पिरिट की कमी तो नहीं है कि बाहर से फिर और भी जाम में भर कर लेनी पड़े!"

क्षण के लिए उसकी मुस्कराहट जैसे गायब हुई, "हां हां!" और फिर हठात् हंस आई। बोली—"सही कहा तुमने बहुत सही कहा। जरूरत तुम्हें होनी चाहिए थी जो अपने का ढक्कन ऊपर देकर अपने को रोके रहते हो। लेकिन क्या किया जाय एकाध किसी को तो भुगतना होगा। मैं सोचती थी—तुम अब मिलोगे नहीं। सोचती थी कि नाराज नहीं हो नाराजी का जरिया अपना रहे हो। ताल्लुक तर्क चाहते हो! झूठ कहती हूं?

"क्यों ऐसा क्यों सोचा?

"मालूम नहीं। लगा कि तुम मुड़ रहे हो। मुझसे नहीं सबसे ही मुड़ रहे हो। जिधर दुनिया है उससे उलटी तरफ जाना चाहते हो। डर तो पहले भी था मुझे तुम्हारे बारे में। लेकिन इस बार—क्या बात है कांटा क्या है?

"कांटा?"

"तुम्हारे दिमाग में था न कि अगर मुल्क की बागडोर तुम्हारे हाथ आ जाय तो ऐसा करो वैसा करो देश को स्वर्ग बना दो। वह बात क्या हुई? इरादा छोड़ बैठे?"

'इरादा नहीं ख्याल चाहे तो हां कह सकती हो। लेकिन मैं देखता हूं शुरू नीचे बुनियाद से करना होगा। राज की ताकत अमन नहीं होती।

'यह डरने कब से लगे हो? कब से खाली हुए हो?

"शायद तुम्हारा ख्याल ठीक हो। पर ख्याल की जड़ पहले से थी। क्यों तुमसे उसका कभी जिक्र नहीं आया? जरूर आया होगा।

"सच कहना, भाभी जल्दी पड़ रही है वजह यह तो नहीं है?"

"नहीं भाभी उतनी जल्दी भी नहीं है—

"खैर, मैं उसमें नहीं हूं। मुझे क्या है? तुम्हारे लिए आत्मा का उबाल उठा हो तो मैं या कोई क्या कर सकता है? पर सच कहो दुनिया में अगर कोई सचमुच परमेश्वर होता है? अगर हो तो अगर जाने से वह शायद मिल भी जाय। 'अंह छोड़ो। यह मैं क्या जानती हूं। लेकिन लगता है कहीं किसी ठोकर से तो तुम नहीं सीख रहे हो। तुम कहते हो ऐसा नहीं है। तो अच्छो ठीक है। लेकिन अन्दर कांटा जरा भी रहेगा तो समझ जाना वह भी दिखाई नहीं देगी।'

मैंने नीलिमा को देखा। हाथ में फिर उसके पैग था आंखों में चमक थी, चेहरे पर जरा-जरा मुस्कराहट और गम्भीरता थी। उसके शब्दों में कोई तत्व विशाल न दीखा। मानो सीधे मेरे प्रति लगाव हो। मैंने मन ही-मन अपने को हतप्रभ अनुभव किया। लेकिन सफाई से बोला 'तुम्हारा मतलब क्या है?"

'मेरा मतलब? भाभी मैं कोई हूं। अच्छा सोचो यहां तक तुम कैसे आए? दुनिया से उलटी जाने वाली राह तुम्हारी होती कामयाबी तुम्हारी उसी तरफ होती तो अब तक वह राह तुम्हें छिपी क्यों रहती? इस उमर में आकर ही क्यों सूझती और दीखती? मैं तो मानती हूं कि मूल में निराशा है। रोष जो तुम में उठा था मन के झगड़े में से आया था। निश्चय जो बना है, हठ में से बना है। 'अगर तुम इस वक्त मेरे हाथ से जरा पी सकते तो अपने नजदीक खुल जाते। खुद देख लेते कि असल तुम क्या हो और अपने साथ जोर-जबरदस्ती तो नहीं कर रहे हो! तुम ऊंचे होना चाहते थे उससे ऊंचे और उससे ऊंचे। मैं कहती हूं इस तबियत में कोई बुराई नहीं है। यह इन्सानी हक है। और आज नहीं तो कल वह तुम्हें मिल सकता है कि जिसका कभी तुमने सपना लिया था! 'सपने से लौटकर वापिस जिस तरफ जाओगे वहां तुम्हें अपनी आत्मा नहीं मिलेगी। फिर मैं कब तक कसोगे आखिर टूटोगे और

का आमन्त्रण हो। मानो एक साथ चुनौती और अभ्यर्थना हो कि प्रहार से तोड़कर उसकी पहचान को मिटा डाला जाए।

नहीं मैं बोध को आगे बढ़ा नहीं सका। हठात् व्यंग्य से मुस्करा कर कहा "पीछे हटती हो! देती क्यों नहीं?"

"तुम्हारा मतलब है कि मैं भी न लूं?"

"नहीं। मतलब है कि मुझे भी दो!

"दिया था तब से नहीं छुके। अब—अमली से लोगे? नहीं पहली बार किसी और के हाथ होंगे जो देंगे। राज है तो ठीक है। फिर आओगे तो मैं भी दूंगी।"

"ये राज को बीच में तुम क्यों लाती हो!

'वह बीच में है।'

"तुम कह रही थीं मैं पी के नमूना। मैं सुनना चाहता हूं। तमाशा न करो भाभी जी।

"अब भी कहती हूं भूलोगे। लेकिन तुम्हारा बन्धन मैं नहीं हूं राज है। बोलेगी तो वही बोलेगी।"

मुझे प्रतीत हुआ कि यह व्यर्थ ही नहीं हो रहा है। आसपास की मेज वालों के लिए कहीं हम दृश्य तो नहीं बने जा रहे हैं। इसलिए संयत होकर मैंने कहा—"राज बीच में नहीं आयेगी!

"नहीं! मैं उसका भरोसा अपने में से नहीं छोड़ूंगी।"

'उसका भरोसा! कैसा भरोसा?

"तुम कहते न थे कि उसने भेजा है?

"हां—!

'राज मुझ पर जीत नहीं सकेगी। पानी है तो हो।

मैं इस अनुमान को समझ नहीं सका। उसमें मान हो सकता था पर दीपती मुस्कराहट थी।

"क्या मतलब तुम्हारा कि तुम जीतोगी?"

"मतलब—कुछ नहीं। उधार वाली ही नहीं हो सकती" "तुमसे एक

वचन चाहती हूँ दोगे ?"

मुझे आसपास का भान होने लगा था। मेरे हाथ में फलों के रस का गिलास था और उसने अपना पैग दूर कर दिया था। ऐसे ही हमने बातों में काफ़ी देर लगा दी थी। दूर से बैरे को उम्मीद में देखता हुआ मैं रह-रहकर दम लेता था। वह पास आने के लिए शायद हमारी फुरसत की राह देख रहा था। मैंने कहा "आर्डर तुमने दे दिया है, मीना ?

"आर्डर—हो जायगा। तुमने बताया नहीं वचन दे सकोगे ?

मैंने हँसकर कहा "पहले आर्डर तो दो।"

उसने हथेली ऊपर किया अपना हाथ मेज पर मेरी ओर बढ़ाया। कहा 'लाओ हाथ दो। मैं वचन चाहती हूँ।

"क्या वचन चाहती हो ?

'पहले हाथ पर हाथ रखो।

मैं विनोद में बात उड़ा देता। पर उसकी निगाह में कुछ था कि वह हो नहीं सका। लम्बी उस हाथ की उंगलियाँ थीं और हथेली जरा-जरा गुलाबी थी और वह हाथ निवेदित प्रतीक्षा में टिका था। सामान्यतः यह तमाशा मान लिया जा सकता था। हाथ चहल-पहल से घिरा था और गम्भीरता की वहाँ संगत न थी। मैंने चाहा कि मान लूँ और टाल दूँ। इसमें कुछ देर वह हथेली उसी तरह फैली रही। अनंतर मैंने अपने पंजे से उसे ढक लिया। कहा "कहो ?

'कहना नहीं है वचन है।"

'हाँ वचन है।

"मैं तुम्हारी कोई नहीं होती हूँ। लेकिन मेरे हाथ पर तुम्हारा हाथ है कहती हूँ तुम पीछे मुड़कर नहीं देखोगे। आगे ही बढ़ोगे। बोलो दिया वचन ?

मैंने अपने हाथ से उसकी हथेली दबाई। कहा "यह तो वचन की बात न हुई। मतलब बताओ क्या है ?

'मतलब कोई दूसरा नहीं है। जीना अन्त तक संघर्ष में से होता है। बीच में सब शान्ति चाहने लगते हैं। शांति वह पुरुषार्थ की नहीं होती हार की होती है। नहीं वह शांति ही नहीं होती। सिर्फ अवसाद होता है।"

'मतलब मैं समझा नहीं।

'मतलब यह कि राजनीति तुम छोड़ नहीं सकते अपना चुके हो।" कहकर उसने नीचे से अपनी हथेली में मेरे हाथ को बांध लेना चाहा। इसमें उसकी उंगलियों का दबाव मैंने अनुभव किया और उसने हाथ खींच लिया। अनन्तर उसने मुझे कोई या तनिक अवसर नहीं दिया बोली, 'हां माईर! बताओ क्या लोगे? और मुड़कर उसने बैरे को इशारा किया।

मैंने कहा 'नीलिमा! तुम राजनीति से भगी हो।"

उसने मेरी बात को जैसे सुना भी नहीं और बैरे के आने पर पूछ-पूछकर आर्डर लिखाने लग गई। जरा थमा गया और मैंने कहा— मुझे तुमने सुना नहीं था नीला। मैंने कहा था कि राजनीति में तुम न आओ और उसके विचार को भी छोड़ दो।

नीला ने कहा अभागिन है वह जो स्त्री है और राजनीति में आती है। या उसका विचार भी करती है। स्त्रीत्व के साथ उसे समझौता ही होता है, शासन नहीं होता।

"फिर ?

"स्त्री के पास प्रेम है। फिर उसे राजनीति का क्या करना है? राजनीति वह करे जिस स्त्री के पास पुरुष न हो। मैं भी अभागिन मैं बन सकती हूं क्या यह सम्भव है? मेरा राजनीति नहीं है। तुम नहीं साथ आने —इस कहने में मुझे कौन-सा रस मिला जाता है। लेकिन पुरानी बातें रहने दो। तुम्हें मालूम था और मैं तुम्हारी नजर से न उन बातों को मैं अलग तरह देखने लग गई थी। आदमी अपने के लिये जीता है और स्त्री उस अपने के आदमी के लिए जीती है। इस के साथ में रहती

वो मीठी तुम्हारे लिए थी। तुम्हारे लिए—यानी जो सपने में बनता था और सपने में मरता था। इसीलिये आज तुम हो कि सब कुछ होकर अपरिग्रह बने हुए हो। इसके भेद को मुझसे ज्यादा और कौन समझेगा? लेकिन अब जो सोचने लग गए हो वह शायद कर्तव्य है सपना नहीं है। कर्तव्य से आदमी बचता है सपना उसे खोलता है पर असल बात तो मेरी अपनी है। सपने में खोए-हारकर तुम जाओगे तो मेरे जीने के लिए क्या आधार रह जायगा?

सुनकर मुझमें जैसे गुस्सा बनता हुआ उठा। मालूम मैं अपना न हूँ, किसी के लिए आधार होने को हूँ। यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। आधार ही बनना होता तो परिवार के लिए न बनता? पैसा वगैरह मकान जायदाद इकट्ठा करता। यह सब झूठी भाषा है आधार देने या बनने की। धरती को सूरज का आधार है, लेकिन धरती अमर है। चांद को धरती का आधार है चांद भी अमर है। आधार है लेकिन किसी पर किसी की चिन्ता नहीं है। मैंने कहा मीता! तुम्हारे जीने के लिए आधार दिए रहने को मुझे जीना होगा!

मुझमें कठोरता थी। सुनकर मीता कुछ पड़ गई। वह अचानक-सी मेरी ओर देख उठी। मैंने कहा सपना था तो मेरा था अब उसकी जगह कर्तव्य है तो भी मेरा है। तुम—इसमें क्या चाहती हो?

"मैं— कहते-कहते वह रुकी और अवश हो आई बोली "कुछ नहीं चाहती। वचन लिया था सो—याचना करती हूँ!

पर मीता एकाएक मेरी समझ में नहीं आई। झुँझलाकर कहा, "आखिर यह सब क्या है?

कुछ नहीं तुम आधार हो!

देरे न देर की!' मैंने जैसे स्वयं को टालने को कहा फिर बोला, "आधार मीता तुमने?"

हाँ मुझमें। इसलिए वचन में भी।"

"मीता तुम राजनीति को समझती नहीं हो!'

"मैं उस कमबख्त को समझना तक नहीं चाहती।" कहती हुई भाभी यह तत्पर हो आईं, 'यह पुरुष का शौक है। कब स्त्री पुरुष को समझ सकी है कि वह क्यों लड़ता है, मरता-मारता है, शिकार में और युद्ध में मजा लेता है?—यह समझ में कैसे आ सकता है? फिर भी स्त्री है कि पुरुष के उस शौक में मदद करती है। इसलिए नहीं कि शौक को समझती है बल्कि इसलिये कि पुरुष है वह और अपनी सफलता की राह पर स्त्री का प्रार्थी है। तुम नहीं हो प्रार्थी और वह ठीक है। चलो, मैं खुश हूं।'

उसका वार सीधा था। पर मैंने कहा 'राजनीति तुम देखती हो वहां जाकर कब गई है। वह अनीति बन गई है। फिर उसमें रहन से कायल हों तो अपने हाथ क्या आएगा?"

'राजनीति कब अनीति न थी? और तुम कह सकते हो कि देश का नंबर एक बनने की तुम्हारे मन में स्पृहा नहीं थी? इस साहित्य की नीति-अनीति पर कभी तुमने सोचा था? मैं कहती हूं शब्द ये हार के हैं नीति-अनीति। हार को अपनाने के लिए तुम इन शब्दों को टटोल लाए हो और मेरे सामने ऊंचा उठा रहे हो। पर स्त्री की और उसके प्रेम की आंख शब्दों के पार देख सकती है। वह खुशी है कि तुम आजाद हो। आभा और अपने आदर्श के और कर्तव्य के साथ रहो। वैसे ही जैसे आदमी बीवी-बच्चों के साथ रहता है। आराम की और सादगी की जिन्दगी होगी वह और मुबारक हो वह तुम्हें। मैं राजनीति नहीं समझती हूं तुम समझते हो। लेकिन कुछ है जो तुम नहीं समझते हो हम सब समझती हैं। राज भी समझती है—

"यानी मुझे नंबर एक बनने की कोशिश करनी चाहिए?"

'जरूर करनी चाहिए। अगर अध्यक्ष-[illegible] की आशा मन में थी और उस आशा ने अब भी तुम्हारे लिये अपना अर्थ नहीं खो दिया है—तो।

"भाभी, हो इसका क्या मतलब होता है?"

कुछ भी मतलब होता हो।"

"मतलब होता है, देश को तोड़ना उसके टुकड़े कर देना।"

'बड़े शब्दों को पैदा करके तुम अपने को डरा ले जाओ और पीछे हटने का कारण बना लो तो कोई तुम्हें रोकेगा नहीं। लेकिन होली को अपने हाथों में मानना कब से सीखे हो? देश को तुम तोड़ सकते हो या शायद देश को जुड़ाने वाला भी अपने को मान सकते हो। इसी तरह तुम लोगों का काम चला करता है, शब्दों के घोरखधन्ध से। उसके जोड़ तोड़ से।'

"मीसा?'

"नहीं अब उस बात को छोड़ो।

'तुम समझती हो रजनी यह चाहती है?

"जरूर चाहेगी क्योंकि जानती हूँ मैं उसमें प्रेम है।

"लेकिन नहीं चाहती वह।

"इसलिये कि तुम्हारे मुंह के शब्दों को तुम्हारे सामने कभी अपने मुंह से भी दुहरा देती है। 'नहीं तुम पापी नहीं हो।

"लेकिन दोषी का भाव तो है!!"

"नहीं! भाग नहीं है, सिर्फ प्रकाश है। बना बनाया मार्ग कोई नहीं हुआ करता जिन्दगी के लिए। पर छोड़ो बैरा आ रहा है।

स्वीकार करना होगा मीनिमा के अधिकार को। वह गुरु था मानो स्वप्रतिष्ठ था। उसे शक्ति की आवश्यकता न थी।

हमारे उठने से पहले ही डिनर की मेज पर आकर दर हमसे माफी मांगते हुए कह गये थे कि वे रिसेप्शन में बैठे हैं। डिनर के बीच बातचीत में मैंने अनुभव किया था कि मीनिमा को साथ रखना ठीक होगा कुंवर से बिना मिले जाना मुनासिब नहीं है और अधिक सम्भव है कि उमापद भी उनके साथ हो। ऐसे समय मीनिमा के कारण असमंजस की परिस्थिति सहज बचाई जा सकेगी। खाने के अन्त में इसलिए मैंने कहा—

"तुम्हें रिसेप्शन में दर की तरफ जाने की जल्दी न हो तो चलो जरा कुंवर को देख लें।"

"मैं चलूँ ? मुनासिब होगा ?

मुझे सहारा हो जाएगा।

"इसी होटल में ठहरे हैं ?"

"इरादा तो यही है।

हम लोग गये तो कमरे के बाहर लाउंज में ही कुँवर और तमारा दोनों मिल गये। शायद हम उन्हें न भी देख पाते। लेकिन तमारा ने उठकर हमें रोका — हलो! इधर आप कहाँ जा रहे हैं? हम तो यह रहे!

तमारा की सिगरेट हाथों में थमी रही और मैंने देखा कुँवर ने अपनी सिगरेट को ऐश-ट्रे में रगड़ कर बुझा दिया है।

ओह! नीलिमा देवी भी हैं! आइए, यहीं बैठिएगा कि कमरे में चला जाए ?

हममें कोई कुछ नहीं बोला था। कुँवर अपनी जगह से उठ आये थे। हमारे मौन असमंजस पर उन्होंने चलकर अपना कमरा खोला और हमारे साथ तमारा भी कमरे में दाखिल हुई।

कुँवर ने सबको बिठाया और तमारा की तरफ देखकर मुझसे कहा, "हम लोग आपकी तरफ आने ही की सोच रहे थे। ज़रा दो मिनिट दे सकेंगे ? माफ़ कीजियेगा नीलिमा देवी!

मैंने समझकर कहा "नहीं, कोई बात नहीं। सब अपने हैं जो हो यहीं कह सकते हो।"

कुँवर ने फिर तमारा को देखा और कहा, नीलिमा देवी अगर माफ़ कर सकें —।

कह तो रहा हूँ कि कहो जो कहना है।

कहकर मैं अपनी सोफ़ा-कुर्सी में और भी निश्चिन्त हो बैठा। तमारा हल्का सा हँसा —"नीलिमा देवी को तकलीफ़ न हो तो ज़रा उस कमरे में आ जाएँगी ?

नीलिमा उठने को तैयार हुईं और मुझे उन लोगों की धृष्टता पर

मायूस हुई। मैंने झटपटे हुए कहा—"ऐसा राज क्या है तमारा? यहाँ न कह सकती हो तो फिर बता जायगा। तुम बैठो नीलिमा।

तमारा ने पर्स पर पेट से एक कागज निकाला। वह अखबार की कतरन थी। मैंने उसे पढ़ा। उसमें संवाददाता ने लिखा था कि सहाय अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं हैं। प्रयत्न किया जा रहा है कि उनके असंतोष को बढ़ने न दिया जाय और किसी-न-किसी तरह शासकीय दल के भीतरी वृत्त में उन्हें सम्मिलित रखा जाय। पर मालूम हुआ है कि उनकी अपनी योजनाएं हैं और न सिर्फ यह कि वह राजी होने को तैयार नहीं हैं बल्कि संभव है कि अपने साथियों के साथ स्वतन्त्र दल को तैयार करके वर्तमान नेतृत्व को चुनौती न दे बैठें। उनके कुछ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के बारे में ज्ञात हो है। ऐसा हुआ तो एक अभूतपूर्व स्थिति का निर्माण होगा और दक्षिण वाम पक्षों के वर्तमान संतुलन में भारी भेद पड़ जायगा।

मैंने पढ़कर तमारा की तरफ देखा।

कुंवर बोले—"बापूजी! हमको अब यह सब चुपचाप नहीं सहना चाहिए। पीछे से कौन क्या यह प्रचार कर रहा है, इसकी खबर लेके मुकाबले को सामने आना चाहिए।

मैंने कतरन नीलिमा के हाथों में दी और कुंवर की बात की तरफ बिना ध्यान दिए तमारा से पूछा—"यह सब क्या किस्सा है तमारा?"

तमारा ने कहा—"मैं खुद कुंवर से इसी बारे में बात कर रही थी। आप क्या जानते हैं?"

"यह अखबार तुम्हारे दल के पक्ष का है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि इसके पीछे क्या नीयत है। तुमने कुंवर से पहले मुझ को यह क्यों नहीं बताया?"

कुंवर बोले—"आपसे यह कुछ छुपी मानती है, इज्जत करती है। लेकिन क्या आप चाहेंगे—कि मैं अखबार वालों से मिलूं और मालूम करूं?"

नीलिमा बोली—"परेशानी की कोई बात नहीं है। अखबार तो अपनी

पढ़ाया ही करते हैं। मैं समझती हूं, इसे तुम देने की कोई जरूरत नहीं है।'

शमारा बोली 'यह चीज बहुत डेमेजिंग हो सकती है।

कुंवर ने कहा 'ऐसी चीजों को नजरंदाज करना खतरनाक होगा। मैं मालूम करूंगा।

मैंने कहा "छोड़ो! यह तो सब चला ही करता है। शमारा, कब तुम मिल सकोगी यहीं चार बजे? हां घर पर। कुंवर तुम यहां होटल में ठहरे तो मजबूरी से ही होंगे। पर घर तो था।

"जी कुछ ऐसा ही काम आ गया यहां का।

"चलोगे सब साथ घर, या सबेरे आओगे?"

'सबेरे ही आना हो सकेगा—अब तो।

इसी समय राजश्री वहां आ पहुंची। आना बेहद अचानक था। आते ही उसने किसी का अभिवादन नहीं किया। मुझसे बोली—"जरा सुनना!

हम दोनों बराबर कमरे के एकांत में आ गए तो राजश्री ने धीमे-से कहा "ठाकुर का फोन था। वीरेश्वर आना चाहता है दिल्ली। ठाकुर का अन्दाज है कि बुलावा कुंवर का है। अभी तो ठाकुर ने मना-सा कर रखा है उसे। लेकिन वासवी फोन से जानना चाहते हैं कि वीरेश्वर को आने दिया जाय या नहीं रोकने की कोशिश की जाए?"

'कितनी देर की बात है?

"सुनते ही तो भागी आई हूं देर की नहीं बात है।

"नहीं वह नहीं आयेगा।

तो यही कह दूं ठाकुर को?"

'हां यह देखना कि कोई जबरदस्ती नहीं है और उसे काबू में रखें।'

इतनी-सी बात के बाद हम वापस आये और राजश्री बिना कुछ बोले सबके बीच में से सीधी बाहर निकलती चली गई। मैंने कहा "तो तुम सबेरे आ सकोगे कुंवर? तुम्हारा तो शमारा चार बजे आने का ठीक

है ? नहीं चार ही बजे मुझे सुभीता होगा। अच्छा, चलो नीलिमा, चलें। कुँवर तुम आ ही रहे हो। हमारा बाई-बाई!

हमारा ने कहा नमस्ते नीलिमा देवी।

नमस्ते तो थी पर जाने उसमें कैसी एक धार थी। नीलिमा ने उत्तर नहीं दिया और हम लोग बाहर आ गये। मन में एक तीव्र और ऊब थी। जैसे कहीं प्रियदर्शन की सुगन्ध हो और स्रोत का पता न हो।

था। उन्होंने खुद सुना, वीरेश्वर को नहीं दिया। कुंवर साहब से कह रहे थे कि वीरेश्वर को फौरन भेज दिया जाय। सन्देश उन्होंने दे दिया और वीरेश्वर—वह किसी तरह रुकने को तैयार नहीं मालूम होता है!"

"छोड़ो होने दो जो हो—तुमने फिर क्या कहा उन्हें ?"

'वही जो तुमने कहा था, कि वीरेश्वर को रोकें, हरगिज़ यहां न आने दें।

मैंने कहा "राज— !

राजश्री ने मेरी तरफ देखा। मेरे सम्बोधन का स्वर अवश्य कुछ भरा और भीगा रहा होगा। वह प्रतीक्षा में मेरी ओर देखती रही। मैंने कहा "राजी क्या सब करता धरता राम ही नहीं है फिर हम बीच में क्यों अपने ऊपर वृथा बोझ लेते हैं ? छोड़ो आओ चलो !

'तो क्या फिर कहना होगा कि वीरेश्वर को अगर वह चाहता ही है तो आ जाने दे ?

'राजी नहीं कुछ नहीं करना होगा। राम चाहेगा वह होगा। " कहता हुआ मैं राज को कंधों से लेकर पलंग तक गया और वहां उसे हाथों से बिठा दिया। फिर कपड़े बदले और कुर्सी सामने लेकर उस पर बैठते हुए मैंने कहा "राज मैं अभी आधी समाधि से आ रहा हूं। बड़ी सूनी वह मालूम हुई। मालूम हुआ कि अन्त में सब सूना ही जाता है। तुमसे एक बात पूछना हूं। तुमने बड़ा कष्ट उठाया है मेरे साथ। इधर आकर रहने-सहने की कुछ सुविधा मिल सकी थी। छोटी चीज़ नहीं है यह और एकाएक मैं उसे छोड़ना भी नहीं चाहता हूं। पर 'तुम बताओ क्या करूं ?"

"फिर वही सवाल ! कब तक उसे पास रखे जाओगे ? काटकर एक तरफ करो और हम सबकी फिकर छोड़ दो। जो तुम्हें अपने लिए ठीक लगे वही करो। जो तुम्हारे हैं उनके लिए भी वही ठीक होगा।

"सच कहना तुम्हारी राय क्या है ?

"मेरी राय कुछ नहीं है। क्यों, मीना ने तुम्हें सिखा दिया है ?

मैं समझती थी निर्णय पर तुम आ चुके हो।

"हां मीरा की कुछ बातों ने डिगा दिया है। इसीलिये तुमसे फिर पूछता हूं। तुम तो कहोगी होगा।

मैं मीरा का समर्थन करती हूं। यही कहा न उसने कि तुम्हें मुड़ना नहीं है?

"राज! तुम एकदम उसी के वाक्य दोहरा रही हो। यह क्या है?"

"मैं उसे जानती हूं वह तुम्हें जानती है। और कुछ मैं भी तुम्हें जानती हूं। लेकिन बस! अब सवाल खतम।"

"राजश्री?

राज पलंग से उठी। उसने बांहों से मुझे उठाते हुए कहा "नहीं बस। अब खतम।

मैं तनिक उठा तो मैंने उठकर सामने उसे फिर पलंग पर बिठा दिया और मैं वहीं कुर्सी पर बैठ गया। कहा "राज। हम तुम जिन्दा थे, जब गांधी जी रहे थे। तुम खुद उनसे मिली थीं। मैं पूछता हूं वह मरे किस लिए? क्या इसीलिए कि हम सब भूल जाएं और इतिहास के लिए छोड़ दें कि वह फिर उन्हें ढूंढकर निकाले। राज, क्या वह मर कर हमें कुछ सौंप नहीं गये हैं?

"नहीं अब झूले में इधर-उधर झूलने की जरूरत नहीं है। मीरा ने कह दिया मैंने कह दिया। बस खतम।

"मीरा ने तो कहा, पर तुम—तुमने भगवान से उस रोज क्या कहा था?"

'हां, मैंने कहा था। अब भी कहती हूं कि भगवान का रास्ता यह नहीं है। उस पर तुम चलोगे, तभी मुझे असली सुख होगा। तब कहा था अब भी कहती हूं। लेकिन तुममें और-और जो बातें आती हैं तुम चल भी पड़ो तो व तुम्हें ऊपर चढ़ने नहीं देंगी। इसलिए कहती हूं।"

"मुझे दुर्बल मानती हो?

'हाँ, दुर्बल मानती हूँ। लेकिन इतनी दुर्बल नहीं कि बस तुम्हें राम का ही रह जाए !

राजश्री सामने बैठी थी। पाँव उसके पलंग की पाटी से लटके हुए थे। मैं कब से उसके मुख देखता था। उन आँखों में सहानुभूति उमड़ आई थी। उसकी बात में गहरी सचाई थी। मैं निरुत्तर बना कुछ देर उसे देखता रहा। फिर जाने क्या हुआ कि कुर्सी से आगे बढ़कर मैंने अपना मुँह उसके घुटनों में छिपा लिया और मैं सुबकने के निकट हो आया। राजश्री का हाथ धीमी-धीमी थपकियाँ देता हुआ मेरे सिर पर घूमता रहा और मालूम हुआ कि उन घुटनों में पड़कर सचमुच मुझे कुछ स्वस्ति अनुभव हुई है।

राजश्री ने कुछ नहीं किया। बैठी वह मेरे पड़े सिर पर बस हाथ ही फेरती रही और मैं अम्बर जितना हल्का होता गया।

अब तक मेरा कुछ भाग तनिक कुर्सी पर टिका था। अब मैं पूरा फर्श पर घुटनों के बल गिर आया। मेरा चेहरा उसी तरह उसके घुटनों के बीच गड़ा रहा और मैंने पाया मेरी दोनों बाहें अनायास बढ़कर राजश्री की कमर को घेर रही हैं। राजश्री ज्यों-की-त्यों बैठी उँगलियाँ देकर मेरे बालों को सँवारती रही। और मेरे हाथों की उँगलियाँ धीमे-धीमे उसकी कमर को सहलाने लगीं। चित्त का विसर्जन जाने कब कैसे परिणत होने लगा और मैं मुँह को वहीं उसकी साड़ी में गड़ाये गुर-गुर कर धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा। कुछ देर बाद मुँह मैंने उठाया और राजश्री को देखा। मानो मैं उसे प्रार्थना हो। ऊपर से राजश्री का चेहरा मुझे देख रहा था। नितान्त प्रशान्त अचल। मानो ऊर्मि उसमें न हो, केवल स्वीकृति हो। इस भाँति कितनी देर मैंने उसे देखा पता नहीं। वह निर्भीक निस्पन्द बैठी रही। फिर बाहु मुझ में हाथ देकर उसने धीमे से मुझे फर्श से उठाया और—

मेरे घुटने पर थाप। उन्होंने पर न बनाय होश में ठहरने की

मजबूरी पर राजश्री से माफी माँगी और वीरेश्वर का ज़िक्र उठाया। कहा, "बाबूजी! वीरेश्वर के साथ आपने न्याय नहीं किया है। उसकी ज़िन्दगी ऐसे कब तक बर्बाद होगी क्यों भाभी?

राजश्री बोली "तुम क्या सोचते हो उसके लिए, बेटा?

"वीरेश्वर का मुझे पत्र मिला था। मैं नहीं चाहता था कि पत्र का ज़िक्र आप से करूँ। लीजिए, यह पत्र है।

राजश्री ने पत्र पढ़ा और पढ़कर मुझे दिया। मैं पढ़ ही रहा था कि कुँवर बोले "आपने देख लिया कि वीरेश्वर की क्या भावनाएँ हैं। मैं समझता हूँ ज़िन्दगी में एक बार उसे पूरा मौका मिलेगा तो यह सब कड़वाहट उसमें नहीं रहेगी। आदमी में कुछ करने और बढ़ने की तबियत का होना बुरा नहीं है। लेकिन वीरेश्वर को मौका ही नहीं दिया गया। आपको क्या उज्र है अगर वह मेरे साथ काम पर आ जाय? मुझे ज़रूरत भी है एक अपने और मौतबिर आदमी की।"

"उज्र भी क्या बात हो सकती है हमारे लिए? लेकिन ठाकुर साहब के यहाँ तो शायद उसे कोई शिकायत नहीं है।"

"आपने उसे पढ़ाया-लिखाया। एम० एस० किया है उसने लॉ किया है। इन सबके बाद भी आप समझती हैं वहाँ खेती-किसानी में उसका मन भरा रह सकता है?

कुँवर का स्वर राजश्री की तरफ ही था और पत्र पढ़ने के बाद मैं अनमना सा उनकी बातों को सुनता रहा था। मैंने बीच में पड़कर कहा— खेती-किसानी कोई हल्का काम तो नहीं है। इसकी तो बल्कि ज़रूरत है कि पढ़े लिखे लोग उधर जाएँ। तब पैदावार बढ़ेगी। आज तो अफ़सोस की बात है कि यह मुल्क अपने लिए खुराक भी जुटा नहीं पाता। तुम्हारे सब उद्योग पीछे हैं। दुनिया में खेती है। और उसकी एम० ए० और लॉ की पढ़ाई का भी वीरेश्वर चाहे तो इसमें पूरा उपयोग हो सकता है। इस पत्र में यह तो नहीं है कि वह तुम पर निर्भर होकर रहना चाहता है या तुमसे काम की आशा करता है।"

कुंवर ने मुझे देखा और जैसे अपने को थामा। कहा "अंजलि की यह राय थी कि उसे इण्डस्ट्री के काम में डालना चाहिए। मैं अपनी तरफ से आप से कहने वाला न था। मुझे आपके विचार मालूम हैं। लेकिन यह विचार का सवाल नहीं है, व्यक्तित्व का है। विचार का बोझ डालकर मुझे सन्देह है कि आपने वीरेश्वर के व्यक्तित्व को बौना कर दिया है। उसकी सम्भावनाएं, मैं समझता हूं अब भी खिलने में आ सकती हैं। हम लोग यही विचार करते रहे हैं। अंजलि ने कहा था कि मैं आपकी चिन्ता न करूं। वीरेश्वर आपका है तो क्या हमारा नहीं है। मैं तो उसे सीधे अपने पास कलकत्ते ही बुलाने वाला था पर अब मैंने प्लान किया है वह दिल्ली ही आ जाये और आपके सामने फैसला हो जाये। शायद आज तीसरे पहर तक वीरेश्वर आ भी जायगा। क्या आप होटल आ सकेंगे आज शाम किसी वक्त? क्योंकि वीरेश्वर यहां नहीं आना चाहता। आपसे मिलने तक में उसे दुविधा होती है। आप होटल आ सकेंगे तो हम जैसे तैसे निभा लेंगे और बातें साफ हो जायेंगी।"

मैंने कहा "ठीक तो है। तुम लोग जो सोचोगे उसके मन की ही सोचोगे। मैं इस बारे में इतना जरूरी भी क्यों हूं। वीरेश्वर जो चाहे मैं उसमें राजी हूं। क्यों राज ठीक है न?"

राजश्री ने जरा मुझे देखा और फिर कहा "नहीं बेटा! तुम्हें चाहिए कि वीरेश्वर को यहीं घर पर लाओ। इतना भी क्या रूठना! आखिर मां-बाप दुश्मन तो नहीं हो जाते। और तुम्हें चाहिए कि उसका अगर बीच में पैर हो गया है तो उसे बढ़ाओ नहीं बल्कि घटाने की तदबीर करो। मुझे यह ठीक नहीं लगा कुंवर कि अपने बाबू जी को तुम होटल आने की तकलीफ दे सकते हो यह नहीं कि वीरेश्वर को ही समझा बुझाकर यहां लाओ और घर को एक जुट करने की कोशिश करो।"

कुंवर ने कहा, "आप गलत समझ गईं मामी जी मेरा मतलब था कि—"

मैंने निर्णय सा देते हुए कहा, "ठीक तो है आज अभी वीरेश्वर को

इन्होंने बुलाया है इनके पास ठहरेगा। और जरूरत हो तो मेरे यहाँ जाने में क्या हर्ज है। अव्वल तो यह गैर-जरूरी है। क्यों इसको क्या खुशी न होगी कि वीरेश्वर के लिए ऐसे काम-काज का ठीक हो जाता है जिससे उसकी तबियत लगे और खुले। क्यों कुँवर तुम क्या बिल्कुल जरूरी मानते हो कि मैं साथ ही आऊँ ?"

'जी भाभी कहती हैं तो मैं कोशिश करूँगा वीरेश्वर को यहाँ लाने की। लेकिन मुझे यकीन नहीं है कि वह आसान होगा। और आप आपकी गैर-जरूरी होने की बात न कीजिये। उसके सारे करियर का सवाल है।

'लेकिन तुम उसके लिए किस काम की सोचते हो ?"

"हमारे मुल्क में ऊन ज्यादातर बाहर से आती है बाबू जी। अच्छी ऊन यहाँ भी कम नहीं होती लेकिन प्रोसेसिंग का इन्तजाम नहीं है। इस तिजारत की यहाँ काफी गुंजायश है। बल्कि हम मुल्क से बाहर भेज सकते हैं। और जरूरी नहीं है कि उसके प्लांट के लिए हमें बाहरी मुल्कों का भरोसा रखना पड़े। प्लांट बन रहा है उसके फिनिश होने और प्रोडक्शन शुरू होने में कुछ वक्त लग सकता है। लेकिन वीरेश्वर के लिए डर का सवाल नहीं है। वह तो फौरन आकर इस काम में बड़ी मदद कर सकता है।

'सरकार से सब ठीक ठाक हो गया ?"

"हाँ काफी तो गया है। आपके आशीर्वाद से बाकी भी सब ठीक हो जायेगा। वह स्टेट के इण्डस्ट्री मिनिस्टर—जरा उन्हें कहने का मलाल होगा। आप जब उधर पधार जाते हैं। प्लांट जमाने के वक्त हम सब को वहाँ करीब एक महीने के लिए रहना होगा। तब आप अपने मुकाम से क्यों एक दिन उधर निकाल सकते तो"

"मैं तो शायद उन साहब को जानता नहीं हूँ।"

कुँवर ने जरा साथ में हँस कर कहा "आप भी क्या कह रहे हैं! —आपको तो वह जानते हैं। आपको कौन नहीं जानता। और आप

भी कुछ ज्यादा नहीं है, स्टेट का आम तौर पर मुश्किल है ही। उसकी जरूरत के लिहाज से तो ये चीज शुरू की जा रही है। सिर्फ यह है कि रेडटेप का थोड़ा शॉर्ट सर्किट किया जा सके तो वक्त की बचत हो जायेगी। वक्त इन मामलों में कीमती होता है।"

"जोगेश्वर की खबर आई है कब आ रहा है?

"ठाकुर से मेरी बात हुई थी। मगर यह ठाकुर बीच में क्या होते हैं? मैंने कहा कि जोगेश्वर को फौरन यहाँ पहुँच जाना चाहिए। मैं इस होटल में हूँ और खबर कीजिये कि वह कब आ रहा है? ठाकुर इस पर इधर-उधर की करने लगे। मैंने जरा डाँट कर कह दिया है और अबकी उन्होंने साफ तो नहीं कहा लेकिन समझता हूँ उन्हें जुर्रत न होगी कि वे अब रोकें। क्या आपकी तरफ से उन्हें यह हक दिया गया है कि घर कुनबे के मामले में वो बीच में दखल दें और जैसा कहा जाये उसकी ताईद न करें?

मैंने कहा 'वह तुम्हारे भी बुजुर्ग हैं।'

"बुजुर्ग तो हैं और मैं उनकी इज्जत कर सकता हूँ लेकिन घर की एकता में वो हारिज नहीं हो सकते। बहुत नागवार मुझे मालूम हुआ उनका ढंग। क्या उन्होंने आपसे पूछा था?

"तुम उन्हें नहीं जानते। मुझसे ज्यादा जोगेश्वर उनका अजीज है। उसके लिए उनके मन में बड़ी ममता है।"

"जो तो ठीक है। लेकिन घर के लोग आखिर घर के रहेंगे। और आप कह दीजियेगा उन्हें कि आइन्दा के लिए ख्याल रखें और मेरे साथ किसी बदगुमान में पेश न आएं।

रानी बोलीं तुम गलत समझे हो। जोगेश्वर नाम उन्हीं का है। तुम्हें उनके बारे में ऐसा नहीं सोचना चाहिए। बल्कि तुम भी उन्हें वैसे ही अजीज हो।"

कुंवर ने हँसकर कहा "जोगेश्वर नाम उनसे ही चलते हैं लेकिन मैं उनका कोई नाम नहीं हूँ और जब मुझे ख्याल आता है कि जिस तरह

फोन पर उन्होंने मुझसे बात-चीत की तो जरूरी मालूम होता है कि आपसे अर्ज करूं कि आपने उन्हें काफी शह दी है। आखिर देहाती हैं और अदब नहीं जानते तो अपनी हद तो जाननी चाहिए। आप यह तो नहीं समझते कि मेरे कहने पर भी वो बीरेश्वर को रोक कर रख सकते हैं ?'

'बीरेश्वर की तबियत देखेंगे तो नहीं रोकेंगे क्यों ?

मेरा ख्याल है आगे आप उन्हें ज्यादा करीब न लें। बीरेश्वर उनके पास हैं इसका उन्हें गुमान होगा। लेकिन बीरेश्वर को वो ठकुआ न समझें और जब तक बीरेश्वर को आप वहां रहने देते हैं तब तक उन्हें समझने का मौका है। मैं देखता हूं इस घर में ठाकुर का काफी असर है। मालूम हुआ मुझे कि वो पीछे घर में ठहराये गये थे। बीरेश्वर वहां है तो बाबू जी भाभीजी यह उनका एहसान नहीं है। बल्कि इसमें उनकी इज्जत बढ़ती है—कि हमारे बाबूजी जैसे आदमी का बेटा उनके साथ है। कतई आपको ठाकुर से दबने की जरूरत नहीं है। और यह भी वजह है कि बीरेश्वर का वहां से आना और इन्डस्ट्री में लगाना जरूरी है। क्योंकि इस मामले में मुझसे पूरी तौर पर इत्तफाक रखती हैं और नहीं चाहती कि आगे हमारे घर में ठाकुर का रब्त-जब्त ज्यादा बढ़े या रहे।

मैं कुंवर को देखता और सुनता रहा। रामश्री को भी देख सका कि यह बर्दाश्त नहीं हो रहा है।

रामश्री ने कहा 'छोड़ो बेटा तुम्हें उन एहसानों का पता नहीं है जो ठाकुर के हम पर हैं।"

"नहीं भाभी यह मैं नहीं सुनूंगा। एहसान अगर दुनिया में हो सकता है तो आपका-हमारा उन पर हो सकता है। आप मानते हैं कि आपके नाम का जरिया उन्हें न मिला होता तो उनकी जगह भी जगह दुनिया में बन पाती ? वो सिर्फ देहाती बने रहते एम० एल० ए० न हो पाते। भाभी जी यह आप लोगों की सिधाई है बीमारी है कि आप ऐसा मानती हैं। लेकिन आगे मेरे रहते इस मोनेशन का अवसर ठाकुर न

रह सकेंगे।"

मैंने कहा 'कुंवर—?

कुंवर बोले 'बाबूजी आप दिल क्यों छोटा करते हैं। आपको मालूम है कि आपके नाम में क्या ताकत है? लाखों के मनों के अन्दर जो नाम बैठा है। सिर्फ यही तो है कि आपके पास पैसा नहीं है जो आपने कमाना नहीं चाहा। सिर्फ इतने के लिए ठाकुर आप पर हावी नहीं हो सकेगा। पैसे की कोई कमी नहीं है और जब तक मैं हूं नहीं बर्दाश्त करूंगा कि ठाकुर जैसे नाचीज लोग आप पर धावा डालें। मैंने सुना था आप खुद वहां जाकर रहने की सोच रहे थे।

"हां।

"किस लिए?

'देहात की जिन्दगी के लिए।

'तो मुल्क में यहां से वहां तक देहात पड़े हैं। कोई देहात छांट लीजिये और मुझे कहिये। मैं वहां कोठी बनवा देता हूं और आप आराम विश्राम से रहिये। इस ठाकुर को अपने को इतना फिरने का मौका क्यों देते हैं? बाबूजी यकीन मानिये कि अब आपको इसकी कोई जरूरत नहीं है। हम लोग करवटें ले शायद नई मंजिल पर पहुंचेंगे। आप वहां हम सब बच्चों को आशीर्वाद देने कब किस तारीख को आ सकेंगे बतलाइये। एक दिन जो भी आपकी सुविधा का हो। भाभी आपको भी आना पड़ेगा।"

आयेंगे क्यों नहीं? मगर तुम्हारे बाबूजी की तबियत अब कुछ ऐसी ही रहती है।

शहर से हमारा फिल्म-एरिया तीन मील दूर होगा। खुलासा ऐसा कि नया देहात होगा। हवा धूपी और पानी तो अव्वल नम्बर का। बाबूजी आपके तो बेहद पसन्द किस कदर खुशगवार है। अगर कुछ दिन रह जायें तो तन्दुरुस्ती फिर आये। अब तो यहां से सीधा रोड भी हो गया है। तकलीफ किसी किस्म की न होगी।

मैं उलझा रहा था कुंवर के आत्मविश्वास और आत्मसंयम पर। कहा, "रमाया ने यह कटिंग तुम को पहले दिखाई थी न? बता सकते हो रमाया को क्यों उसकी फिक्र है?"

"प्रभासि जी को हम लोगों के विवाह से भी पहले की मित्र हैं और अपने को परिवार का आत्मीय ही मानती हैं। इसमें क्या कुछ आप ऐसा देखते हैं? मैं तो समझता हूं मुनासिब किया उसने कि ध्यान दिया और आप तक उसकी खबर पहुंचाई। हम सब का वह हित चाहती है और परिवार का प्रभाव बढ़ा हुआ देखना चाहती है। उसने मुझ से कहा—"

मैंने रमाजी की ओर देखा और संकेत समझकर वह हमारे बीच से चली गई। जाने पर मैंने कुंवर से पूछा "हां अब कहो क्या कहती थी?"

"जो अपने देश में हो रहे विकास की बात कह रही थी। विकास निर्माण और उत्पादन में नहीं हुआ है, विधि और व्यवस्था में भी हुआ है। यहां पर राज्य और समाज के सम्बन्ध बदलने जा रहे हैं। राज्य कभी डिक्टेटर या उसकी जरूरत रही होगी। लेकिन अब वो फलस्वरूप समाजी होता जा रहा है। वे लोग पहले राज के ही सांचे पर लेन-देन का सम्बन्ध बना सकते थे। अब धीरे-धीरे वो बात नहीं रही है और राज्य से उबर कर दूसरे मसलों का भी सीधा नेगोसिएशन हो सकता है। वो कहती थी कि रशिया अभी तक मशीनी पश्चिमी सभ्यता का अंग है लेकिन असली मन का उसका साथ पूर्वी संस्कारों से अधिक है। असल में वो पूरब है पश्चिम नहीं है। वो मानती है कि दुनिया का भविष्य बनने वाला है तो अधिक वह पूरब में बनेगा। पश्चिम तो अपने उद्योग-विज्ञान वगैरह की सम्भावनाएं मानो चुका चुका है। अधिक जन-संख्या इधर पूरब में है और जन का विकास भी यहीं अधिक है। धनवादी युग अपना खेल खेल चुका। भविष्य जनवादी संस्कृति के हाथ है और इस दृष्टि से पूरब के देशों के सम्बन्ध घने और दृढ़ होने चाहिए। आपसी व्यापार उनका बढ़ना चाहिए। संस्थाओं में हेल-मेल और आदान-प्रदान होना चाहिए। उसे राजनीति में दिलचस्पी नहीं है। क्या उसका मालूम है

और पूर्वी गोलार्द्ध में एकता बढ़ाने का सपना लेकर जो कला के क्षेत्र में आई है और यहां भारतवर्ष में रह रही है। उसने मुझसे कहा था कि राजनीति के पुरुष तो काम-धाम में रहते हैं और उससे ऊपर देखने की फुर्सत अपने को नहीं देते हैं। पर तुम्हारे बाबूजी एक उनमें अपवाद हैं जो ऊंचाई और गहराई से सोचते हैं। राजनीति में इस तरह के संस्कारी प्रभावों का होना बहुत जरूरी है, नहीं तो जो काम की चीज नहीं रह जायेगी और भारत से जो आशाएं हैं वो पूरी नहीं हो पायेंगी। आप बाबूजी हमारा को गलत न समझें। जो ऊंचे विचारों की रुची है। खास कर हम लोगों के परिवार के लिए तो उसमें भक्ति और प्रशंसा की भावनाएं हैं।"

मैं इस लम्बे वक्तव्य को सहता चला गया था। कहा, 'तुम लोग अखबार की उस गप्प को महत्त्व देते हो। आखिर क्या सोचते हो?'

"जरूर वो गप्प है पर बेमतलब नहीं है। इसका उत्तर अपने इरादों की सफाई पेश करके नहीं दिया जा सकता है। पर उत्तर देना जरूरी है। नहीं तो उस खबर से भारी अनर्थ हो सकता है। लोगों के मनोभावों में भेद डाला जा सकता है। और मेरा विचार है उसमें देर नहीं करनी चाहिए। जवाब एक्शन से ही हो सकता है और वो तत्काल—

'क्या मतलब तुम्हारा?

मैं नहीं जानता इस शरारत के पीछे अफवाह फैलाने वालों का आशय क्या रहा होगा? लेकिन हमको बताना है कि आप अगर घर से अलग रहते हैं तो उसका दूसरा अभिप्राय नहीं है और अगर यही उसका दूसरा ही लिया जाता हो तो घर से अलग रहने की जिद की भी जरूरत नहीं है।

"हमारा से इस बारे में तुमने बात की है।"

"बहुत पहले ही बात कर रहा हूं। और अगर आप मान लेते हैं तो गलतफहमियां हमेशा के लिए खत्म हो जाती हैं।"

'ओहो!—मुनिया की तबियत कैसी है? सुना था मना शादी

खराब रहा, टेम्प्रेचर भी रहा। और बच्चू साहब तो मजे में हैं ?"

"जी हाँ सब राजी हैं खुशी हैं आप फरवरी में एक दिन निकालियेगा अवश्य।"

"हाँ नहीं तो तुम्हारी भाभी तो जरूर आएगी। अब भी बच्चू के अपने मेरी रहती है। बड़ा दंगई हो गया होगा वह। पूरे दांत निकल आये कि नहीं ?—कब तक हो यहां ?

"वीरेश्वर का पक्का करने जाने की बात है। बाकी तो यों ही समरी का काम है। उसकी चिन्ता नहीं है।

मैंने अपनी ओर से कहा "जाओगे ? क्या उस पर किसी को बुलाया हुआ है। यह तो भई ठीक नहीं किया तुमने। हमारा मिले तो कह देना, चार बजे मैं उसकी राह देखूंगा और" तुम क्या कह रहे थे वह पता लगाने के बारे में अखबार से कि यह खरापत किसकी है ?'

"जी हाँ यह तो पता लगाना ही होगा। लेकिन उन तत्त्वों को जवाब पक्का नहीं होगा कि सहयोग का हाथ बढ़ाकर आप दिखाएं और पूरा कल्पनाओं की धार ही काट दें।"

कुंवर चल गये तो मैं अपने ऊपर कुछ विस्मय करता रह गया। वैसे तर्क से मैं मान सकता हूं कि पीढ़ी भर से योग्यता का अन्तर नहीं होता है बल्कि नई पीढ़ी अधिक योग्य है। तो भी लगता है कि व्यवहार में कुछ मर्यादाएं तो हो ही सकती हैं। पर शायद पीढ़ी का ही यह मेरा अपना दुराग्रह हो।

मैंने राजश्री से कहा "जीवन ठाकुर को फोन करके पूछो कि क्या वीरेश्वर आ रहा है ?"

संयोग कि पंद्रह मिनिट की भी देरी नहीं हुई आकर राजश्री बोली, "ठाकुर हैं फोन पर, बात करोगे ?

फोन पर पहुंच मैंने कहा— 'ठाकुर, क्या रहा ? वीरेश्वर मान गया ?"

"हाँ कुंवर देर से तो घर ही पहुंच रहा होगा।"

"कुंवर तुम्हारी शिकायत कर रहे थे। क्या हुई बात ?"

और पूर्वी गोलार्द्ध में एकता बढ़ाने का सपना लेकर वो कला के क्षेत्र में आई है और यहां भारतवर्ष में रह रही है। उसने मुझसे कहा था कि राजनीति के पुरुष तो काम-धाम में रहते हैं और उससे ऊपर देखने की फुर्सत अपने को नहीं देते हैं। पर तुम्हारे बाबूजी एक उनमें अपवाद हैं जो ऊंचाई और गहराई से सोचते हैं। राजनीति में इस तरह के संस्कारी प्रभावों का होना बहुत जरूरी है नहीं तो वो काम की चीज नहीं रह जायेगी और भारत से जो आशाएं हैं वो पूरी नहीं हो पायेंगी। आप, बाबूजी तमारा को गलत न समझें। वो ऊंचे विचारों की स्त्री है। खास कर हम लोगों के परिवार के लिए तो उसमें पवित्र और प्रशंसा की भावनाएं हैं।

मैं इस लम्बे वक्तव्य को सहता चला गया था। कहा "तुम लोग अखबार की इस गप्प को महत्व देते हो। आखिर क्या सोचते हो?

"खबर तो गप्प है पर बेमतलब नहीं है। इसका उत्तर अपने इरादों की सफाई पेश करके नहीं दिया जा सकता है। पर उत्तर देना जरूरी है। नहीं तो इस खबर से भारी अनर्थ हो सकता है। लोगों के मनोभावों में भेद डाला जा सकता है। और मेरा विचार है उसमें देर नहीं करनी चाहिए। जवाब एक्शन से ही हो सकता है और वो तत्काल—'

'क्या मतलब तुम्हारा?

'मैं नहीं जानता इस शरारत के पीछे अमल करने वालों का आशय क्या रहा होगा? लेकिन हमको बताना है कि आप अगर पद से अलग रहते हैं तो उसका दूसरा अभिप्राय नहीं है, और अगर अर्थ उसका दूसरा ही लिया जाता हो तो पद से अलग रहने की जिद की भी जरूरत नहीं है।

"तमारा से इस बारे में तुमने बात की है!'

'पहले आपसे ही बात कर रहा हूं। और अगर आप मान लेते हैं तो गलतफहमियां हमेशा के लिए खत्म हो जाती हैं।

"छोड़ो।—मुनिया की तबियत कैसी है? सुना था गला काफी

ब रहा टेम्प्रेचर भी रहा। और बच्चू साहब तो मजे में हैं ?'

"जी हां सब राजी हैं खुशी हैं आप फरवरी में एक दिन ालिबेगा अवश्य।"

"मैं नहीं तो तुम्हारी भाभी तो जरूर आएगी। अब भी बच्चू के ने बैठी रहती है। बड़ा दर्द हो गया होगा वह। पूरे दांत निकल आये नहीं ?—कब तक हो यहां ?

वीरेश्वर का पक्का करके जाने की बात है। बाकी तो यों ही ऊपरी काम है। उसकी चिन्ता नहीं है।'

मैंने अपनी ओर से कहा 'जाओगे ? क्या फोन पर किसी को बुलाया ा है। यह तो भई ठीक नहीं किया तुमने। हमारा मिले तो कह देना, र बजे मैं उसकी राह देखूंगा और' तुम क्या कह रहे थे वह पता गने के बारे में अखबार से कि यह षड्यन्त्र किसका है ? '

"जी हां वह तो पता लगाना ही होगा। लेकिन उन उचक्कों को ाब पक्का नहीं होगा कि सहयोग का हाथ बढ़ाकर आप दिखाएं और ा अक्लमन्दों की जड़ ही काट दें।"

कुंवर चले गये तो मैं अपने ऊपर कुछ विस्मय करता रह गया। वैसे क से मैं मान सकता हूं कि पीढ़ी भर से योग्यता का अन्तर नहीं होता है, बल्कि नई पीढ़ी अधिक योग्य है। तो भी लगता है कि व्यवहार में कुछ मर्यादाएं तो हो ही सकती हैं। पर शायद पीढ़ी का ही यह मेरा अपना पुरानापन हो!

मैंने राजश्री से कहा "फौरन ठाकुर को फोन करके पूछो कि क्या वीरेश्वर आ रहा है ?

संयोग कि पंद्रह मिनिट की भी देरी नहीं हुई आकर राजश्री बोली, 'ठाकुर हैं फोन पर, बात करोगे ?"

फोन पर पहुंच मैंने कहा— 'ठाकुर, क्या रहा ? वीरेश्वर चल दिया ?"

"हां कुछेक देर में तो घर ही पहुंच रहा होगा।"

"कुंवर तुम्हारी शिकायत कर रहे थे। क्या हुई बात ?"

"सुनो सहाय कुंवर बड़े होंगे तो घर के होंगे। जमाई होंगे तो तुम्हारे होंगे। मुझपर धौंस जमाते हैं तो किस बात की ? कहने लगे वीरेश्वर को सवेरे तक यहां पहुंचा दीजिये। खर्च की परवाह न कीजिये। मैंने साहब खर्च की परवाह क्यों न करूं। बड़े आये खर्च देने वाले रईसजादे मैंने कह दिया है वीरेश्वर की मर्जी होगी आयेंगे नहीं होगी तो नहीं आ सकते हैं। आपकी बात उन तक पहुंचाने से ज्यादा मैं कुछ नहीं कर सकता। बोले फोन पर बुला के बात कराइये। मैंने कहा दूर है तीन मिनट में मुमकिन नहीं है। बोले तीन छः मिनट का सवाल नहीं जाए फोन शुरू करलें। बिल मेरी तरफ मानियेगा। बोलो सहाय कुंवर की हिमाकत है कि नहीं !

"छोड़ो ठाकुर ! नये पैसे के बन्दर को कुछ तो मौका दो। वीरेश्वर का रुख क्या रहा ?

'कुछ समझ में नहीं आया। सोचता तो मैंने मुनासिब नहीं समझा है और वीरेश्वर की अपनी तबियत देखी तो सवेरे के प्लेन का इन्तजाम कर दिया है। ढाई-तीन तक पहुंच जाना चाहिए। सहाय तुम शायद सोचते हो कुंवर बच्चा है। लेकिन उसे अदब सीखना चाहिए। तुम नहीं कहो मैं ठीक करूं। यह काम तुम शहरियों का नहीं हम देहातियों का चक्कर छांटना।

'मेरा अब भी ख्याल है ठाकुर कि वीरेश्वर को तुम्हारे पास रहना चाहिए। तुमसे तो उसकी बनती ही है।

"बनती तो खूब है। सिर्फ ख्याल कभी-कभी उठते हैं। मैं सोचता जल्दी शादी होनी चाहिए।"

"तो तलाश करो—।"

चार बजे से कुछ पहले ही तमारा आ गई। बोली "बधाई दीजिए कि मैं समय पर आ गई। वीरेश्वर अभी पहुंचे हैं। मेरे साथ यहां आना चाहते थे। उसमें आध घण्टा लग जाता। आपकी समय की ताकीद थी और मुझे भी शायद घसेने आना था।

"वीरेश्वर आ रहा होगा क्या ?

"पता नहीं।"

"तुम्हारा वह अखबार की कतरन जो तुमने मुझे बताई थी, उसके बारे में मैं मानता हूं तुम जानती हो।

"जी—?

"क्या मेरा ख्याल गलत है कि तुम्हें जानना चाहिए ?"

"आप क्या कह रहे हैं।"

"जिस अखबार में छपी है उससे क्या तुम्हारा सम्बन्ध नहीं है ?

"मैं समझी नहीं आप क्या कहना चाह रहे हैं ?"

"तुम उसका उत्तर आवश्यक समझती हो ?

"फकत इतना अगर वह फँसने की जाती है तो उससे दम की ताकत टूट सकती है।

"क्या समझती हो, उत्तर उसका हो सकता है ?

"आप साबित कर सकते हैं कि किसी असहयोग का सवाल नहीं है। चाकर साबित—

—शब्द से नहीं कर्म से होगा।

मैंने वाक्य कहा और कड़ी निगाह से शकुन्तला को देखा। वह सफाई सी देती बोली—

"जी नहीं साहिब—"

तभी घण्टी बजी। मैंने फोन उठाया तो मालूम हुआ, नीलिमा बोल रही है।

"हलो घर में हूं। हम लोग आज जा रहे हैं। तुम शाम को हम लोगों के साथ जरा बाग पर आ जाओगे। वीरेश्वर यहीं है मेरे पास, वह भी होगा।

"फोन देना वीरेश्वर को।"

"देती हूं। तब आ रहे हो न ?"

"बुलाया मीनाक्षी ने था।

"तो भी—घर आते तो अच्छा न रहता!"

"आपने ठाकुर साहब को मेरे आने के बारे में मना किया था?"

'मेरी तो उनसे बात भी नहीं हुई। तो सुनो '

लेकिन मालूम हुआ उधर फोन पर मीना है कह रही है, "तो तुम आ रहे हो न?'

"वीरेश्वर का तुम्हें पता कैसे चला?

'रमारा से मैंने बातें की थीं। उसने आने की आशा बताई थी।"

"अच्छी बात है आ जाना।

कहकर मैंने सामने रमारा की ओर ध्यान दिया। कहा—

'रमारा माफ करना। उधर मीनिमा देवी थीं। तुम जाकर मिली थीं उनसे?

'नहीं फोन से उन्होंने ही बुलाया था।

"कुंवर के कमरे में तुम साथ रहती हो?

"काफी समय साथ रहता है।'

"वीरेश्वर की खबर तुमने ही दी?'

"हां, मैंने कहा था।"

मैंने देखा जैसे मेरे कहने से रमारा कुछ सहमत में आती जा रही है। और मैंने हंसकर कहा "रमारा मैंने गुस्सा करने को तुम्हें बुलाया था। पर तुम गुस्से के लिए नहीं हो। तुम अभी बहुत नादान हो भावुक हो प्यारी हो। एक बात कहता हूं देखना चतुर बनने की कोशिश न करना!

"आप यह क्या कह रहे हैं?"

"इसके अलावा जैसे संगीता मेरी बेटी है वैसे तुम भी बेटी हो।"

'वो तो हूं ही लेकिन आप आज कह रहे हैं!"

"अच्छा रमारा मैं तुम्हारे होटल आ रहा हूं। शायद मिलना हो।

"तो मैं जाऊं।'

"हां, नमस्ते।"

'नमस्ते।'

और तमारा कुछ निराश और कम्पित सी मुड़कर मेरे यहां से चलीं तो मुझे अजब-सी एक सहानुभूति का अनुभव हुआ—

नौ

मालूम होता है कोई भी अपने में नहीं है। जाने क्या ताना बाना यहां फैला है कि उसमें होकर व्यक्ति का चलना-फिरना करना-धरना उस पर निर्भर नहीं रह जाता। वह उसका नहीं होता उसके द्वारा होता है।

जीवन के इस खेल के पीछे क्या लीला काम कर रही है, पता नहीं। प्रगट उसमें कोई तुक नहीं दीखती। यदि पीछे कोई आशय है संगति है तो सूझने में नहीं आती। समय शायद उसका ही अनुभावन करता हो लेकिन इस लीला की व्यंजना का कालपर्यंत अन्त तो कहीं है नहीं। इसलिए कहीं जाकर उसका अर्थ भी समाप्त या सम्पन्न क्या हो पायगा।

मैं होटल में सीधा नीलिमा के यहां पहुंचा था। उसका अनुरोध यही था। वह चाहती थी कि धीरेश्वर के साथ बातचीत पहले कुंवर के यहां न हो उसकी उपस्थिति में हो। उसने मुझे एक तरह आड़े हाथों लिया और कहा कि धीरेश्वर अच्छा लड़का है होशियार है। सिर्फ मेरी वजह से डरा हुआ है।

नीलिमा का परिचय धीरेश्वर से अधिक पुराना न था। दो-एक बार यों ही मिलना हुआ हो तो हुआ हो। उसको लेकर नीलिमा का अधिकारी स्वर मुझे रुचिकर न हुआ। लेकिन मैं चुप रहा और नीलिमा को देखता रहा। वह और तरह चाहे जितनी भी कमनीय मालूम होती हो लेकिन अपने इस अधिकारपूर्ण भाव में मुझे क्रूर लग रही थी।

ऐसा मालूम हुआ कि इस समय की बीच में है वह दूसरा नहीं है और मैं अपने में अपेक्षातीत स्वाधीन और मुक्त हूँ। मुझे चुप देखकर थोड़ी देर बाद मीता ने कहा—

"बुलाऊं वीरेश्वर को? टेलीफोन पर वह शायद ही आये। कहीं बाहर गया ही न हो!"

"जाकर लाने की कोई जरूरत नहीं है। मैं वहीं कुंवर के यहां उससे बात कर चुका। वह क्या चाहता है?"

"आजादी चाहता है।

"उसकी आजादी को रोका किसने है?"

'अपने बारे में आपके ही अनिश्चय ने। हम में कोई एक दूसरे के लिए कुछ नहीं कर सकता। पर जो अपने साथ न्याय करता है वह अनायास दूसरे की मदद कर जाता है। मुझे लगता है आप अपने को रोकते रहे हैं। इसीलिए वीरेश्वर रुका-सा रह गया है।"

नीलिमा का सम्बोधन का स्वर कुछ प्रिय न हो रहा था। मैंने हंस कर कहा "छोड़ो यह बताओ कि वह तुम्हें इस कदर आजाद क्यों लगते हैं?'

नीलिमा मुस्कराई। बोली — वह मन को आजाद रखते हैं और मैं इसमें उनकी सहायता करती हूँ। इस में मेरी आजादी अपने आप बन जाती है। अपने न पूछो मेरी आजादी का पथ क्या तुम दूर को होगे, मुझे नहीं जाने? लेकिन देखती हूँ ध्यान करके अगर वीरेश्वर आ जाए।

"नहीं मीता। तुम इस झगड़े में न पड़ो।"

"झगड़ा किस बात का है! जो तुम्हारा है क्या वह मेरा भी नहीं है? और वीरेश्वर होनहार लड़का है।"

"मीता, तुम्हें मालूम है मैं अपने से भागकर तुम्हारे पास आता हूँ। तुम मुझे सौंपकर फिर पर-निरपेक्षता के मामलों में व्यस्त हो तो क्या अपने साथ न्याय करती हो? तुम तो धूप की मानिन्द हो, कि जिसे

कोई जिम्मेदारी नहीं ओढ़नी चाहिए।

मीना हँसी। बोली, 'तुम जानते हो तुम्हें धन आपखुशी की जरूरत नहीं है। मैं जीती जा चुकी हूँ। लेकिन तुम समझते हो आदमी फूल के मानिन्द होता है तो जिम्मेदारियों से भागकर होता है। नहीं, जिम्मेदारियों से निबट कर आदमी वह चीज पाता है जिससे फूल खिलता और महकता है। मैं देख रही हूँ कि तुम चिड़े-से हो, खिल नहीं रहे हो, और शायद यह इसी वजह से कि शीघ्र तुम इन जिम्मेदारियों को उठाने से बचना चाहते हो जो सामने हैं और तुम्हारी होने के लिए हैं।"

"क्या मतलब?

"मतलब क्या! वीरेश्वर को ही लो, तुम उसे घर से टाल नहीं सकते। यह क्या है कि वह ठाकुर के पास रहता है? तुम्हें मालूम है कि वीरेश्वर समझता है कि वह तुम्हारे घर का बोझ है और इसीलिए अपने से नाराज रहता है कि वह बोझ क्यों है? और अपने साथ की यह नाराजी तुम्हारे साथ भी बन जाती है और फिर यह नाराजगी सारी दुनिया के लिए होने लग जाती है।

इन बातों से अनुभव हुआ कि दूरी कम हो रही है और मीना का अधिकार मार्गपथ को जगह स्पृहणीय बना जा रहा है। मैंने कहा, "उसे पैसा बरतने को चाहिये। नहीं तो मानता है मैं कंजूस हूँ और उस पर अविश्वास रखता हूँ। तुम जानती हो हम यहाँ गरीब जनता की सेवा के नाम पर आये हैं। यहाँ आकर हमारे लिए सब तरह का सुभीता हो जाता है। सुभीता इस बात का भी हो जाता है कि पैसा चाहें तो कितना ही बटोर डालें। शायद वीरेश्वर की आँखें स्थिति की इसी सुविधा को देखती हैं। लेकिन उसे गहरे देखना चाहिए। उसे देखना चाहिए कि यह त्याग नहीं है और उसका नाम नहीं लिया जा सकता। बल्कि सच पूछो तो यह ज्यादती है कि हम अपने पर खर्चने के लिए हजार से ऊपर रुपया पा जाते हैं, जबकि बेचारा वास्तव आदमी जाने कैसे काम चला पाता होगा। वीरेश्वर ने स्थिति का यह पहलू कभी समझा नहीं

चाहा और मुझे दुख है कि कुँवर के साथ शायद तुमने भी उसी राह उसको बढ़ावा दिया । मैं नहीं समझता कि पढ़ने-लिखने का या दूसरे मौकों का यह मतलब है कि जिन्दगी को आराम पसन्द बना लिया जाय । और आराम—

नीला ने हँस कर कहा '—हराम है, क्यों नहीं न ? पर मुझे हराम से डर नहीं है कि आराम से डर । तुम नाहक डर रहे हो आराम से और सिर्फ इसलिए कि किसी ने उसके मुँह में पास जाकर हराम शब्द रख दिया है ।' यहाँ नीला खिलखिला पड़ी और आँखों में चितवन लाकर बोली 'मुझे देखो ! मैंने सब शब्दों को छोड़ दिया है—इसलिये कि जिन्दगी को बरता जाए । फूल के मानिन्द तुम मुझे बताते थे, और मालूम है तुम इस वक्त किसके मानिन्द दीख रहे हो ? नहीं आगे नहीं कहती । लेकिन पैसे की इफरात से पैसे का अभाव कभी बढ़कर नहीं हो सकता । तुम अपने को शाबाशी देना चाहते हो कि इस बात पर कि मौके आए और पैसा तुमने पास नहीं किया । लेकिन क्या शाबाशी दोगे अपने को इस बात पर कि वीरेश्वर तीस से ऊपर हो गया और अभी तक अपने को तुम्हारे नजदीक लाकर और सिर का बोझ मानता है ? गैर मानो कि वो ही बच्चे हैं तुम्हें और अंततः कुँवर को पा गई है । देखो पर उसके स्वास्थ्य को अपनी खुशी को । क्या वीरेश्वर उसके भाई जैसा तक समझता है ! कुँवर को पैसे की सहूलत न होती और अंततः बिन ब्याही होती तो वह भी शायद तुम्हारे लिये मर-खप रही होती" यह कहता हो कि मैं—तुम्हारे लिए बेकार हूँ ? नहीं हूँ बेकार, तो किस लिए मरी हूँ ? इसीलिए कि पैसे की कमी नहीं है, तुम्हारी छोटी-मोटी फिकरें मुझसे दूर रह जाती हैं और मेरी तन्दुरुस्ती को जरा भी गुरेज नहीं आती और मैं ध्यान की उन ऊँचाइयों पर पहुँच सकती और टहल सकती हूँ जो तुम्हें पसन्द है । यही न ? अरे, लेकिन मैंने तुम्हें पूछा भी नहीं कि क्या सोचे । तो जरा वीरेश्वर को देख लेती हूँ साथ ही चाय भी हो जायेगी ।"

नीलिमा को मानना होगा। उसने मौका नहीं दिया और कुंवर से फोन मिलाकर वीरेश्वर को आने के लिए कहा।

वीरेश्वर ने पूछा 'बाबूजी आ गये ?"

"नहीं तो तुम्हें किसलिए बुला रही हूं !'

"तो बाबूजी को फोन दे दीजिये।'

मैंने फोन लिया तो दूसरी तरफ कुंवर बोल रहे थे। उन्होंने कहा "आप इधर आ सकें तो हम सब लोग इन्तजार कर रहे हैं। खाना भी है। आप यहीं लीजिएगा।"

मुझे यह अच्छा नहीं लगा। लेकिन एकाएक उत्तर में कुछ सूझा नहीं। बोला 'मुझे कुछ देर लग सकती है।"

"जी कोई बात नहीं। जब फुरसत हो आइये। नीलिमा बेटी भी है हमारी तरफ से माफी मांग लीजिएगा। क्या आपके साथ यह भी आयेंगी ?—आ सकेंगी ?"

मैंने कहा वीरेश्वर जरा इधर आ जाता तो अच्छा था।'

उधर प्रतीत हुआ कि कुंवर ने वीरेश्वर से पूछ-ताछ की फिर मुझे कहा "वीरेश्वर कह रहे हैं कि आप यहां तो आने ही वाले हैं !"

मैंने कहा "अच्छा !" और फोन को धप से बन्द कर दिया।

अनन्तर नीलिमा को देखा। मेरी आंखों में झुंझलाहट का भाव रहा होगा। मुझे ऐसा भी लग रहा था कि मेरे साथ नीलिमा का भी अपमान किया गया है। किन्तु नीलिमा की निगाह में सहानुभूति थी और उस को किसी अनुकूलता की चेतना न थी। मैंने इस भाव से देखा कि नीला बताओ ऐसे परिवार के साथ क्या किया जा सकता है ? ये शब्द मुखर होकर तो मेरे मुंह से नहीं आये थे लेकिन मेरी मुद्रा से यही प्रगट हो रहा होगा।

फोन लेने में मुझे खड़ा होना पड़ा था। नीला भी खड़ी ही थी। उसने मुझे देखा और मेरे कन्धे पर हाथ रखा। मानो आश्वासन देती हो। बोली मामा क्यों चिन्ता किस बात की करते हो ?"

कन्धे से थामती हुई वह मुझे कुर्सी तक लाई और वहां बिठा दिया।

मुझमें कुंवर की उस बेसबरी का विचार भरा था और मीनिमा समझ रही थी कि देखो इस तरह तुम आज के जवान लोगों की बातों पर चौक्का करोगे तो कैसे चलेगा? हम तुम शायद उन्हें ठीक तरह समझ नहीं सकते हैं। आगे दुनिया उनकी है और हम बीत रहे हैं। इसलिए वे अगर आत्म विश्वास से भरे हैं तो इसमें क्या बुराई है? बुजुर्गों की क्या यह कमजोरी नहीं है कि वे अपने लिए विनय चाहते हैं और छोटों से सिर्फ आज्ञा-पालन की आशा करते हैं।

"मीना तुमने अच्छा नहीं किया कि फोन किया। मेरे यहां होने और ठहरने पर वे क्या सोचेंगे।

मीना खिलखिलाकर हंसी। बोली "और क्या सोचेंगे? यही सोचेंगे कि उनके बाबूजी भी उनके जैसे जवान हैं और मीनिमा देवी—"

मैं उस हंसती हुई मीना की तरफ देखता रह गया। कितनी वह उदार और निश्चिन्त रहती है। देखा जाय तो हमारे समाज में इज्जत आबरू की रक्षा का प्रश्न पुरुष से अधिक स्त्री के लिए ही है। लेकिन जैसे वह सब व्यर्थ प्रश्न हों और मीनिमा को छुआ ही न हो। मीनिमा अत्यन्त सम्भ्रान्त स्तर की महिला है। लेकिन इतनी विचित्र कि जैसे उसके सामने स्तर आदि का प्रश्न कभी उपस्थित ही नहीं होता है।

मुझे अपने में मग्न देखकर मीनिमा ने कहा क्यों जवान बने रहने में कोई दोष तो नहीं है? हां दोष इसमें है कि समझने तो बाहर जवान जाएं और भीतर से वैसा व्यवहार कर न सकें। छोड़ते क्यों नहीं हो फिकर को। जवान लोगों को बढ़ने-बदलने दो जैसे वो चाहें। मैं तो सोचती हूं कंवर को मोर्चा में रोका तो वीरेश्वर बदल जायेगा। मानती हूं कि ममता का आगम विश्राम है तुम्हारे कंवर में! "छोड़ो सोच को उतार फेंको। लाओ अपना हाथ दो!"

मीनिमा ने मेरा हाथ उठाया और अपनी हथेली पर थाम लिया। दूसरे हाथ की हथेली से उसको फिर वह धीमे-धीमे सहलाने लगी। मेरा

हाथ कुछ देर वहां निश्चेष्ट रखा रहा। फिर एकाएक मैंने नीलिमा की हथेली को दबाया और हाथ वापिस खींच लिया। कहा "नीला इसका यही उत्तर हो सकता है कि आप तुम भी वहां चलो।

"कुंवर यह नहीं पसन्द करेंगे।

इसीलिए और भी तुम्हें चलना चाहिए। तुम्हारे चलने से उसको सबक मिलेगा।

नहीं, सबक बतानों को अच्छा नहीं लगा करता। और तुम कहो तो मैं फिर फोन मिलाए देती हूं। इस बार जरा रौब से कहना कि वीरेश्वर फौरन आए—जरा रौब के साथ।

मैं सहमत हुआ। फोन पर मैंने सीधा हुक्म दिया और वीरेश्वर नीलिमा के कमरे में आ पहुंचा। दरवाजे से ही नीला ने उसे कन्धों से थामकर अपने पास सोफा पर बिठाया और बैठते समय वीरेश्वर ने मुझे जरा झुककर नमस्कार किया।

"कहो वीरेश्वर ठीक-ठाक हो? पहले से कुछ दुबले दीख रहे हो!"

"जी नहीं सब ठीक है।

"नीलिमा देवी ने बुलाया, तुम आये क्यों नहीं?

"आप—ऊपर आ ही रहे थे।

तो भी देखो हमें नाहक फिर दुबारा बुलाना पड़ा।

"जी हां! नाहक तो यह हुआ।

उत्तर सुन कर मैं अपने भीतर खिंचा। मैंने कहा, "कुंवर ने तुम्हें बुलाया है। क्या सोच रहे हैं वह तुम्हारे बारे में?

"आप उनके खिलाफ क्यों हैं?

"मैं खिलाफ! कैसी बात तुम करते हो?

"आप ठाकुर साहब को अपने ज्यादे नजदीक मानते हैं।

"नजदीक तो ठाकुर साहब हैं ही। पर कुंवर तो सगे हैं। नहीं, नहीं, यह तुम्हारा गलत खयाल है और कुंवर को ऐसा लगता है तो भूल है।, शायद मुझसे कोई गलती हुई हो। लेकिन एक बात है, अग्रवाल,

में सब का रास्ता मरघट से गुज़रता है। सरकार अजब चीज हुआ करती है। इसलिए जिसको इण्डस्ट्री कहा जाता है उसकी जड़ें नहीं होती हैं। एग्रिकल्चर सबसे भूख की इण्डस्ट्री है। उसमें जिन्दगी आबाद रहती है और आदमी कुदरत से बहुत दूर नहीं जाता। इण्डस्ट्री में वह दौड़-धौड़ के पीछे पड़ा रहता है और सही पूछो तो उसमें वह जिन्दगी के बुनियादी उसूलों से दूर पड़ने लग जाता है। यही मेरा ख़याल था और है। पर मगर तुम—

बीरेश्वर मुझे देख रहा था। उसके चेहरे पर व्यंग्य था। वह कुछ देर चुप रहा। फिर बोला— आप अपने को कामयाब आदमी समझते हैं शायद!

कहकर उसने किसी अन्दर मस्ती से देखा। जैसे फैसला उसके पास है और मेरा उससे बचाव नहीं है। उस दृष्टि से मुझे डरना पड़ा। मैंने मस्ती से कहा 'कामयाब? नहीं तो! मैं बिलकुल नाकामयाब आदमी नहीं हूं।

"फिर फैसला अपने हाथ में क्यों लेते हैं?

शीलिमा बैठी चुप रही थी और सिर्फ देख रही थी। मेरी निगाह उस पर गई। उसकी आँखों में मुझे सहानुभूति दिखाई दी। जैसे साथ कुछ एहसान भी हो। किन्तु मैं अपने को रोक नहीं सका। बोला अपने बारे में तुम फैसला कर सकते हो। दूसरों को उसकी तकलीफ़ उठाने की फिर क्या गरज रह जानी चाहिए?

"लेकिन मुझे कभी आपने मुझ पर टोका है? वैसे भी अब अन्तर नहीं है तो साथ में आपने उपन्यास भी पेश किया है। क्या इसी विश्वास के बल पर आप मानते थे कि मैं अपने बारे में फैसला कर निकलूंगा? लेकिन गलत हो गया। मुझ अब इस तंग दायरे में नहीं रहना है।"

मुझे तो खुशी होगी कि तुम किसी अपने मन के काम में लगो और तरक्की करो।"

'आपको खुशी होगी?—तो अच्छी बात है कि आपकी नदी इसमें

हाथ कुछ देर वहीं निश्चेष्ट रखा रहा। फिर एकाएक मैंने नीलिमा की हथेली को दबाया और हाथ वापिस खींच लिया। कहा, "भीला इसका यही उत्तर हो सकता है कि आप तुम भी वहां चलो।

"कुंवर यह नहीं पसन्द करेंगे।

इसीलिए और भी तुम्हें चलना चाहिए। तुम्हारे चलने से उसको सबक मिलेगा।

"यही सबक जवानों को अच्छा नहीं लगा करता। और तुम कहो तो मैं फिर फोन मिलाए देती हूं। इस बार जरा रौब से कहना कि वीरेश्वर फौरन आए—जरा रौब के साथ।

मैं सहमत हुआ। फोन पर मैंने सीधा हुक्म दिया और वीरेश्वर नीलिमा के कमरे में आ पहुंचा। दरवाजे से ही नीला ने उसे कन्धों से थामकर अपने पास सोफा पर बिठाया और बठते समय वीरेश्वर ने मुझे जरा झुककर नमस्कार किया।

"कहो वीरेश्वर, ठीक-ठाक हो? पहले से कुछ दुबले दीख रहे हो!"

"जी नहीं सब ठीक है।

"नीलिमा देवी ने बुलाया तुम आये क्यों नहीं?

'आप—उधर आ ही रहे थे।

"तो भी देखो हमें नाहक फिर दुबारा बुलाना पड़ा।

'जी हां! नाहक तो यह हुआ।

उत्तर सुन कर मैं अपने भीतर खिंचा। मैंने कहा "कुंवर ने तुम्हें बुलाया है। क्या सोच रहे हैं वह तुम्हारे बारे में?

आप उनके खिलाफ क्यों हैं?

मैं खिलाफ! कैसी बात तुम करते हो?

'आप ठाकुर साहब को अपने ज्यादे नजदीक मानते हैं।

"नजदीक तो ठाकुर साहब हैं ही। पर कुंवर तो सब हैं। नहीं, नहीं यह तुम्हारा गलत खयाल है और कुंवर को ऐसा लगता है तो भूल है।, शायद मुझसे कोई गलती हुई हो। लेकिन एक बात है, इन्सट्रीच,

में सब का वास्ता सरकार से पड़ता है। सरकार अजब चीज हुआ करती है। इसलिए जिसको इण्डस्ट्री कहा जाता है उसकी जड़ें नहीं होती हैं। एग्रिकल्चर सबसे मूल की इण्डस्ट्री है। उसमें जिन्दगी आजाद रहती है और आदमी कुदरत से बहुत दूर नहीं जाता। इण्डस्ट्री में वह जोड़-तोड़ के पीछे पड़ा रहता है और नहीं पड़ो तो उसमें वह जिन्दगी के बुनियादी उसूलों से दूर पड़ने लग जाता है। यही मेरा जवाब था और है। पर अगर तुम—

वीरेन्द्र मुझे देख रहा था। उसके चेहरे पर व्यंग्य था। वह कुछ देर चुप रहा। फिर बोला—"आप अपने को कामयाब आदमी समझते हैं शायद!

कहकर उसने किसी कदर नाराजी से देखा। जैसे फैसला उसके हाथ है और मेरा उससे बचाव नहीं है। उस दृष्टि से मुझे डरना पड़ा। मैंने जल्दी से कहा 'कामयाब? नहीं तो! मैं बिल्कुल कामयाब आदमी नहीं हूं।

'फिर फैसला अपने हाथ में क्यों लेते हैं?

नीलिमा बैठी सुन रही थी और सिर्फ देख रही थी। मेरी निगाह उस पर गई। उसकी आंखों में मुझे अप्रतीति दिखाई दी। जैसे साथ कुछ अहसान भी हो। किन्तु मैं अपने को रोक नहीं सका। बोला अपने बारे में तुम फैसला कर सकते हो। दूसरे की उसकी तकदीर उठाने की फिर क्या गरज रह जानी चाहिए?

"लेकिन मुझे कभी आपने मुझ पर छोड़ा है? वैसे भी अब जरूरत नहीं है तो साथ में आपने उपदेश भी पेश किया है। बड़ा इसी अधिकार के बल पर आप सोचते थे कि मैं अपने बारे में फैसला कर निकलूंगा? लेकिन बहुत हो गया। मुझे अब इस तरह दायरे में नहीं रहना है।

"मुझे तो खुशी होती कि तुम किसी अपने मन के काम से लगो और तरक्की करो।"

"आपको खुशी होती?—तो अच्छी बात है कि आपकी मर्जी इसमें

नहीं है कि मैं आपका पाबन्द रहूं।

"वीरेश्वर !

"कुंवर भाई मुझे अपने साथ रखना चाहते हैं। छह महीने समझ-बूझ लूं तो फिर किसी काम का इण्डिपेण्डेण्ट चार्ज मुझे दे देने की सोचते हैं। इसमें आप को क्या एतराज है ?

"किसने कहा कि मुझे एतराज है ?

'कुंवर का यही ख्याल है कि आप पसन्द नहीं करते।

"शायद पसन्द तो नहीं करता हूं। लेकिन यह तो अपने-अपने रुझान की बात है। बाकी जिसमें तुम्हें रुचि हो उस काम से मैं तुम्हें क्यों रोकने लगा हूं।

मीनिमा बीच में बोली "कुंवर साहब से ठीक ब्यौरे से बात हुई है क्या कि वह बाद में तुम्हें किस काम में लगाना चाहेंगे वीरेश ?

वीरेश्वर ने मीमा को ऐसे देखा जैसे दखल पसन्द न हो। बोला—

'छह महीने तक सब काम समझ जाने पर मुझे मौका देना चाहते हैं कि मैं चुन लूं।

यह तो ठीक है। लेकिन कुछ टर्म्स की बात हुई ?

"अपने में क्या टर्म्स की बात हुआ करती है ? आपको मालूम है वह हमारे सगे हैं।

मैंने कहा 'कुंवर ने मुझसे इसका जिक्र नहीं किया।

"वो तो कहते थे बात हुई थी। ज्यादा जिक्र भी क्या होता। आपका उधर ध्यान भी हो।

बहुत हो गया था और मैंने स्थिति को हाथ में लेना चाहा। कहा—

"देखो वीरेश्वर। हममें गलतियां भी हो सकती हैं। लेकिन तुम सीधे ऊपर उधर के हो गये हो। एक तरह मुझसे खारिज हो। भूल जाओ जो हमसे गलत हुआ है। हम लोग बीतते दिन के और हैं। आगे जिन्दगी तुम्हारी है। यह भी मत समझो कि हमारा बोझ है तुम पर है और अपनी आशाओं के खातिर हम तुम्हें बन्धन में रखना चाह सकते हैं। पर उस

थी कि तुम्हारी शादी होती और तुम अब तक जिम्मेदारी लेकर पूरे नागरिक के तौर पर कहीं जमे होते। शायद तुमने हमारा ही ख्याल रखकर हमसे आजाद होकर अपने को अलग बनाना नहीं चाहा। उधर शादी के मामले में तुम यह भी कहते रहे कि अपने पांव जब तक न खड़े होगे तुम उस जंजाल में नहीं पड़ोगे। मेरी जिन्दगी तुम जानते हो उन धर्मों में बीती है जिनसे रोजगार नहीं बढ़ सकती है। यानी मैं तौर से तुम्हें किसी रोजगार में नहीं लगा सकता था। इसकी शिकायत तुम्हें हो तो ऐसा नहीं है। लेकिन मेरी मर्यादाओं का ख्याल रखते तो तुम हम लोगों से बंधे नहीं रहते और जिन्दगी के कीमती साल प्रोटेस्ट में ही नहीं गंवा डालते। पर मेरी बात छोड़ो। तुम्हारी मां ने तो बड़े जतन से तुम्हें पाला है। तुम्हारा और भाई कोई नहीं है। अगर अपने बोझपन में वह तुम्हारा सहारा पाने की सोचती भी है तो तुम मानोगे यह अस्वाभाविक नहीं है। बहिन है तुम्हारी एक। लेकिन बेटियां तो पराये घर की होती हैं। इधर घर की आस एक तुम थे और तुम हो। तुम्हारी मां के तुम लाड़ले रहे हो। लेकिन अगर यह प्यार तुम्हें बन्धन मालूम हो तो ऐसी कोई बात नहीं और तुम अपना मार्ग चुनने को स्वतन्त्र हो। रहा कुंवर का सवाल। कुंवर ने खुद कई बार ऐसा भाव प्रकट किया था कि रिश्तेदारों में बिजनेस का सम्बन्ध रखना वाजिब नहीं हुआ करता है। शादी की उम्र हद से ऊपर हो गया है। तुम्हारी मां ने कई बार कहा कि मैं कुंवर को कहूं। लेकिन क्या था जो कुंवर को मालूम नहीं था। और तब तो उनको आदमी की जरूरत और भी ज्यादा रही होगी। क्यों उन्होंने कभी तुम्हें अपना कोई काम नहीं सौंपा। आज तक इधर ध्यान नहीं दिया तो अब उनकी तुम्हारे बारे की इस चिन्ता पर मुझे कुछ सोचना पड़ जाता है—

सहसा मैं कुछ रुका और देखा कि वीरेश्वर को कुंवर की समीक्षा प्रिय नहीं हो रही है। मैंने कहा "मेरा मतलब यह नहीं है कि—

वीरेश्वर ने कहा "अन्याय न कीजिये बापूजी। कुंवर भाई बड़े

नहीं है कि मैं आपका पाबन्द रहूँ।

'वीरेश्वर!'

'कुंवर भाई मुझे अपने साथ रखना चाहते हैं। छह महीने समझ-बूझ लूँ तो फिर किसी काम का इण्डिपेण्डेण्ट चार्ज मुझे दे देने की सोचते हैं। इसमें आप को क्या एतराज़ है?

'किसने कहा कि मुझे एतराज़ है?

"कुंवर का यही ख्याल है कि आप पसन्द नहीं करते।

"शायद पसन्द तो नहीं करता हूं। लेकिन यह तो अपने-अपने रुझान की बात है। बाकी जिसमें तुम्हें रुचि हो उस काम से मैं तुम्हें क्यों रोकने चला हूं।

नीलिमा बीच में बोली 'कुंवर साहब से ठीक ब्यौरे से बात हुई है क्या कि वह बाद में तुम्हें किस काम में लगाना चाहेंगे वीरेश?

वीरेश्वर ने नीला को ऐसे देखा जैसे दखल पसन्द न हो। बोला—

'छह महीने तक सब काम समझ जाने पर मुझे मौका देना चाहते हैं कि मैं चुन लूं।

यह तो ठीक है। लेकिन कुछ टर्म्स की बात हुई?

अपने में क्या टर्म्स की बात हुआ करती है? आपको मालूम है वह हमारे सगे हैं।

मैंने कहा "कुंवर ने मुझसे इसका जिक्र नहीं किया।

"जो तो कहते थे बात हुई थी। ज्यादा जिक्र भी क्या होता। आपका उधर ध्यान भी हो!"

बहुत हो गया था और मैंने स्थिति को हाथ में लेना चाहा। कहा—

'देखो वीरेश्वर। हमसे गलतियां भी हो सकती हैं। लेकिन तुम ठीक से ऊपर उमर के हो गये हो। एक तरह मुझसे काबिल हो। तुम आपो भी इससे गलत हुआ है। हम लोग कितने दिन के और हैं। आगे जिन्दगी तुम्हारी है। यह भी मत समझो कि हमारा बोझ है तुम पर है और अपनी आशाओं के खातिर हम तुम्हें बन्दिश में रखना चाह सकते हैं। पर जब

ो कि तुम्हारी शादी होती और तुम अब तक जिम्मेदारी लेकर पूरे नागरिक के तौर पर कहीं जमे होते। शायद तुमने हमारा ही ख्याल रखकर मसे आजाद होकर अपने को अलग बनाना नहीं चाहा। अगर शादी के मामले में तुम यह भी कहते रहे कि अपने पांव जब तक न खड़े होंगे तुम इस जंजाल में नहीं पड़ोगे। मेरी जिन्दगी तुम जानते हो उन कामों में बीती है जिन्हें रोजगार नहीं कह सकते हैं। यानी मैं सीधे तुम्हें किसी रोजगार में नहीं लगा सकता था। इसकी शिकायत तुम्हें हो तो बेजा नहीं है। लेकिन मेरी मर्यादाओं का ख्याल रखते तो तुम हम लोगों से रूठे नहीं रहते और जिन्दगी के कीमती साल प्रोटेस्ट में ही नहीं गंवा सकते। पर मेरी बात छोड़ो। तुम्हारी मां ने तो बड़े लाड़ से तुम्हें पाला है। तुम्हारा और भाई कोई नहीं है। अगर अपने बुढ़ापे में वह तुम्हारा सहारा पाने की सोचती भी है तो तुम मानोगे यह अस्वाभाविक नहीं है। बहिन है तुम्हारी एक। लेकिन बेटियां तो पराये घर की होती हैं। इस घर की आस एक तुम थे और तुम हो। तुम्हारी मां के तुम लाड़ले रहे हो। लेकिन अगर यह प्यार तुम्हें बन्धन मालूम हो तो ऐसी कोई बात नहीं और तुम अपना मार्ग खुद बना सकते हो। रहा कुंवर का सवाल। कुंवर ने सब कई बार ऐसा भाव प्रकट किया था कि रिश्तेदारों से बिजनेस का सम्बन्ध रखना जोखिम का हुआ करता है। शादी को छह बरस से ऊपर हो गया है। तुम्हारी मां ने कई बार कहा कि मैं कुंवर को कहूं। लेकिन क्या था जो कुंवर को मालूम नहीं था। और अब तो उनको आदमी की जरूरत और भी ज्यादा रही होगी। क्यों उन्होंने कभी तुम्हें अपना कोई काम नहीं सौंपा। सात बरस तक ध्यान नहीं दिया तो अब उनकी तुम्हारे बारे की इस चिन्ता पर मुझे कुछ सोचना पड़ जाता है—

पढ़कर मैं कुछ रुका और देखा कि वीरेश्वर को कुंवर की समीक्षा प्रिय नहीं हो रही है। मैंने कहा "मेरा मतलब यह नहीं है कि—"

वीरेश्वर ने कहा 'अन्याय न कीजिये बाबूजी। कुंवर भाई पहले

थे कि अब तक उन्हें संकोच रहा। यह अधिकार नहीं मानते थे अपना कि मेरे बारे में आपसे किसी तरह का प्रस्ताव करें। अंजलि भी कहती थी—कि बाबूजी के मान के लिए यह उचित नहीं है। वह बुरा मान जायेंगे और समझेंगे कि सहायता का हाथ बढ़ाया जा रहा है। उधर तो आपका इतना लिहाज, और आप अपने मान में उन्हें उल्टा ही समझ रहे हैं। मैंने बी० ए० दस बरस हुए किया था। क्या यह किसी और का काम था कि मुझे वसीले से लगाये। पर आपके मान ने उनको दूर रखा कि जो इस बारे में कुछ कर सकते थे। यहां तक कि ठाकुर साहब के पास मैं गया तो इसमें आपका कोई इशारा या मशविरा न था। यह तो ठाकुर की चिन्ता थी और मां की ममता थी कि आपके पीठ पीछे फैसला हुआ और मैं अन्त में किसी काम में लगा तो सही।"

"तुमने एम० ए किया और लॉ किया। उससे आगे किसी को क्या करने को रह जाता था?"

"जी कुछ करने को नहीं रह जाता था। और अब भी कुछ नहीं है जो मैं आपको करने को कहता हूं। इतना है कि आप भूल जाइये कि मैं आपका लड़का हूं। मैं अनाथ होता तो इससे अच्छा होता। यह तो न होता कि दूसरे बाप मानते मैं बाप मानता और वह सब मानना बेकार जाता।

नीलिमा से शायद सहा नहीं जा रहा था। वह बोली—

"वीरेश्वर बेटे, तुम अपने बाप को नहीं जानते। सोचो कि जिसे अपने पुत्र से यह सुनना पड़े वह कितना अभागा होगा।

"मैं इनका पुत्र नहीं हूं। बस सिर का बोझ हूं। यह दूर करना चाहते हैं और मैं इनके सिर पड़ा हूं। अभागा तो मैं हूं कि यह अपनी धार्मिकता में मुझे डांट-डपट भी नहीं सकते हैं और ऐसे रखते हैं जैसे मैं इनके लिए डरावना बन गया हूं। आप मेरा कष्ट नहीं समझेंगी, मांजी। इनका नाम है और मैं इनका बेटा समझा जाता हूं। और बाहर ... जाते हैं और मैं छोटा बन जाता हूं।

और सोचकर अपने मन में आ जाता है कि किसी से कुछ सुनना न पड़े। समझते हैं यह काहिली है, बुजदिली है। वो तो होगी ही। लेकिन यह सब—सब इनके अभिमान की वजह से है। मैं पूछता हूं कि अभिमान किस बात का है? इस बात का है कि बेटे को पैसे नहीं देते हैं कि जैसे अपने को भी नहीं देते हैं! फटी चप्पल पहन सकते हैं, फटा कुरता पहन सकते हैं क्या अभिमान इसी बात का है? इनके लिए यह शोभा की बात होगी। लेकिन उस तरह की शोभा के गौरव का दूसरे के हक में क्या नतीजा निकलता है यह कभी सोचा है? माँ को कैसे कष्टों [illegible] सहना पड़ा है मैं जानता हूं। इनको तो उन कष्टों की वाहवाही मिल जाती थी न। नामवरी मिल जाती थी। लेकिन जिनको कुछ नहीं मिलता, सिर्फ कष्ट ही मिलता है उनके बारे में इन्होंने कभी सोचा है? आप हमारे परिवार से हमदर्दी रखती हैं भाभी लेकिन इनका यह ढोंग है कि पद नहीं चाहिए। पद के लिए तो सारा त्याग-तपस्या का यह रूप है। ऊपरी जो है नखरा है। इसलिए है कि आग्रह अनुरोध और हो, और यह जाहिर कर सकें कि पद ने नहीं बल्कि इन्होंने पद पर कृपा की है!"

धीरेश्वर की बातों को मैं सुनता रह गया। मुझे वह सच्ची मालूम होती थीं। शायद इसलिए कि स्वयं मुझमें से उनकी सचाई की प्रतिध्वनि आ-आ जाती थी। मैंने देखा कि नीलिमा इन बातों से बहुत व्यग्र हो आई है। उसे शायद अनुमान न था कि धीरेश्वर की चोट कितनी गहरी है। नीलिमा व्यग्र न होती तो हो सकता था कि धीरेश्वर के उद्गार और भी तीखी धार से निकलते। उसने बीच में टोककर कहा "बस धीरेश्वर! काफी हो गया है। अब आगे कुछ तुम्हें नहीं कहना चाहिए।"

"आप नहीं जानतीं हैं भाभी। मेरी जिन्दगी इन्होंने बर्बाद कर दी है। मैं क्या नहीं कर सकता था। अब भी क्या नहीं कर सकता हूं। और आखिर कुछ भी करने लायक इन्होंने मुझे नहीं छोड़ा है। वजह यह कि सब कुछ करने लायक यह अपने को मानते थे और मुझे या तो नाक

करते थे, या आज्ञा देते थे।"

नीला ने कहा "बस वीरेश्वर। और कहने के साथ अपना हाथ उसके मुह पर रख दिया।

वीरेश्वर ने वह हाथ झटके से हटाया और वह आगे कुछ बोलने को हुआ कि नीला ने तेजी से उसके गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया और जोर से बोली "बस चुप!

यह सब अनायास हो गया। नीला स्वयं चकित रह गई। थप्पड़ खाकर वीरेश्वर दो-एक क्षण नीलिमा को देखता रह गया। ऐसा लगा कि उसकी आंखों में ज्वाला है और आगे वह क्या कर बैठे। नीलिमा ने उसकी निगाह से अपनी आंखें नहीं हटाईं। उन आंखों में विस्मय था और अब क्षणिक करुणा भी हो आई थी। उसने भी वीरेश्वर की आंखों में चिनगारी देखी होगी। लेकिन उसकी अपनी आंखों में किसी भय की क्षणिक भी झलक न थी। मानो उनमें धुकधुकाहट तक न हो और वह भीतर स्वस्थ और विश्वस्त हो।

वीरेश्वर कोई एक मिनट तक अपलक नीलिमा को देखता रहा। नीलिमा की भी पलक झपी नहीं। मैं दृश्य का साक्षी हुआ बैठा था, एकदम चुप और सुन्न कि तभी देखा वीरेश्वर अपने मुंह को दोनों हाथों में ढक कर रोता हुआ नीलिमा की गोद में गिर पड़ा है। सिसक रहा है, सुबक रहा है कि डांटी तुमने ठीक किया। बाबूजी ने तो कभी मुझे मारा तक नहीं। जो बेट की गुस्ताखी सहे, मारे नहीं वो डांटी क्या बाप होता है? डांटी देवता हो सकता है पर क्या बाप वह हो सकता है? नीलिमा वीरेश्वर के सिर के बालों में हाथ फेरती रही उसे थप थपाती रही समझाती रही कि तुम अपने बाबूजी को जानते नहीं हो बेटा। बाल सोम तो गुस्ताखी नहीं होगी।

इस बीच नीलिमा भूल ही गई थी। वीरेश्वर के आते ही बात में टेढ़ी पड़ता गई थी और ध्यान किसी दूसरी ओर न जा सका था। वीरेश्वर के सिर में हाथ फेरते हुए नीलिमा ने मुझे उठने का इशारा

किया और मैंने कमरे से बाहर जाकर आते हुए बैरा को काफी वगैरह का आर्डर दिया।

कमरे में आया तो वातावरण बदला हुआ था। वीरेश्वर, स्वस्थ और प्रसन्न अपनी कुर्सी में बैठा हुआ था और सीलिया उससे तमारा के बारे में पूछ रही थी।

मेरे आने पर सीलिया ने कहा "लो फोन मिलाती हूं। एक बार फिर रोज आवभगत होगा। कुंवर और तमारा दोनों को बुला लेना ऐसा कि यहीं आकर काफी पीएं और बात करें।"

मैंने कहा "वीरेश्वर क्यों न करें फोन। फिर रोज की भी जरूरत न होगी।"

सीलिया ने कहा, "यह ठीक है। लो वीरेश्वर, फोन करके दोनों को यहीं बुला लो।"

वीरेश्वर ने कहा "मैं माफी मांगता हूं बाबूजी।"

"किस !"

"आप ही कीजिए फोन जोगी। नहीं तो बाबूजी करें। मैं—"

"अच्छा मैं करती हूं।" कहकर कमरे का नम्बर मिलाया कहा, "वीरेश्वर जी से बात कीजिएगा" और कहने के साथ फोन वीरेश्वर के हाथ में थमा दिया।

वीरेश्वर के लिए उपाय न रहा "बोला कुंवर भाई मैं वीरेश्वर हूं। बाबूजी आपको और तमारा को यहीं बुला रहे हैं। हमारी पार्टी का भी अनुरोध है।

"लेकिन भाई वहां तो सब तैयारी है—"

"जोगी जी कह रही हैं कि तैयारी सब यहीं ले आइये। तमारा को बता दीजिये तो—

तमारा ने कहा "कहो वीरेश्वर, कहो क्या हुआ!

वीरेश्वर ने कहा "तमारा कुंवर को लेकर तुम यहां कितने मिनट में पहुंच सकती हो? उन्हें साथ लाना है, छोड़ना नहीं है।"

करते थे, या भाषण देते थे !

नीला ने कहा "बस वीरेश्वर !" और कहने के साथ अपना हाथ उसके मुंह पर रख दिया।

वीरेश्वर ने वह हाथ झटके से हटाया और वह आगे कुछ बोलने को हुआ कि नीला ने तेजी से उसके गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया और जोर से बोली "बस चुप !"

यह सब अनायास हो गया। नीला स्वयं चकित रह गई। थप्पड़ खाकर वीरेश्वर दो-एक क्षण नीलिमा को देखता रह गया। ऐसा लगा कि उसकी आंखों में ज्वाला है और जाने वह क्या कर बैठे। नीलिमा ने उसकी निगाह से अपनी आंखें नहीं हटाईं। उन आंखों में विस्मय था और अब तनिक करुणा भी हो आई थी। उसने भी वीरेश्वर की आंखों में चिनगारी देखी होगी। लेकिन उसकी अपनी आंखों में किसी भय की तनिक भी झलक न थी। मानो उसमें धका-धाधका तक न हो और वह भीतर स्वस्थ और विश्वस्त हो।

वीरेश्वर कोई एक मिनट तक अपलक नीलिमा को देखता रहा। नीलिमा की भी पलक झपी नहीं। मैं दृश्य का साक्षी हुआ बैठा था, एकदम चुप और गुम कि तभी देखा वीरेश्वर अपने मुंह को दोनों हाथों में ढक कर रोता हुआ नीलिमा की गोद में गिर पड़ा है। सिसक रहा है, सुबक रहा है कि भाभी तुमने ठीक किया। बाबूजी ने तो कभी मुझे मारा तक नहीं। जो बेटे की गुस्ताखी सहे, मारे नहीं वो भाभी क्या बाप होता है ? भाभी देवता हो सकता है, पर क्या बाप वह हो सकता है ? नीलिमा वीरेश्वर के सिर के बालों में हाथ फेरती रही उसे थप काती रही समझाती रही कि तुम अपने बाबूजी को जानते नहीं हो बेटा। जान लोगे तो गुस्ताखी नहीं होगी।

इस बीच नीलिमा भूल ही गई थी। वीरेश्वर के आते ही बात में देरी पड़ती गई थी और ध्यान किसी दूसरी ओर न जा सका था। वीरेश्वर के सिर में हाथ फेरते हुए नीलिमा ने मुझे बटन का इशारा

किया और मैंने कमरे से बाहर जाकर आते हुए बैरा को काफी वगैरह का आर्डर दिया।

कमरे में आया तो वातावरण बदला हुआ था। बीरेश्वर, स्वस्थ और स्वच्छ आराम कुर्सी में बैठा हुआ था और मौसिमा उससे तमारा के बारे में पूछ रही थी।

मेरे आने पर मौसिमा ने कहा "लो फोन मिलाती हूं। एक बार फिर रौब जमाना होगा। कुंवर और तमारा दोनों को हुक्म देना होगा कि यहीं आकर काफी पीएं और बात करें।"

मैंने कहा 'बीरेश्वर क्यों न करें फोन। फिर रौब की भी जरूरत न होगी।

मौसिमा ने कहा "यह ठीक है। लो बीरेश्वर, फोन करके दोनों को यहीं बुला लो।

बीरेश्वर ने कहा, "मैं माफी मांगता हूं बाबूजी।'

'क्यों!

"आप ही कीजिये फोन आंटी। नहीं तो बाबूजी करें। मैं—

"अच्छा मैं करती हूं। कहकर कमरे का नम्बर मिलाया कहा, "बीरेश्वर जी से बात कीजियेगा और कहने के साथ चोंगा बीरेश्वर के हाथ में थमा दिया।

बीरेश्वर के लिए उपाय न रहा बोला कुंवर भाई, मैं बीरेश्वर हूं। बाबूजी आपको और तमारा को यहीं बुला रहे हैं। हमारी आंटी का भी अनुरोध है।

"लेकिन भाई यहां जो सब तैयारी है—

"आंटी जी कह रही है कि तैयारी सब यहीं ले आइये। तमारा को जरा दीजिए तो—

तमारा ने कहा 'कहो बीरेश्वर, कहीं रम गये!

बीरेश्वर ने कहा "तमारा कवर को लेकर तुम यहां कितने मिनट में पहुंच सकती हो? तुम्हें साथ लाना है छोड़ना नहीं है।"

"वो तो मना कर रहे हैं।"

"फिर तुम क्या रहीं कि मना कर रहे हैं। देखो पाँच मिनिट।"

'पाँच नहीं दस।'

'अच्छा दस सही। पर साथ आना। नहीं तो बाबूजी मुझे या तुम्हें माफ नहीं करेंगे।

मैं अभी तक यहाँ मूक दर्शक था। अतः मुझे ध्यान हुआ कि काफी वगैरह का नये मेहमानों के लिए तुरन्त आर्डर कर दूँ और मैं वीरेश्वर को नीलिमा के साथ रहने देने के लिए आर्डर के बहाने फिर कमरे से बाहर आ गया। और नीलिमा के चयन की तासीर के बारे में सोचता रह गया।

दस

मैं नहीं जानता पीछे क्या हुआ। मुझे बाहर पाँच-सात मिनट ही लगे होंगे। पर वीरेश्वर एकदम बदला दीख पड़ा था। लगता था कि वह सर्वथा नीलिमा के अधीन हो गया है।

मेरे आने पर नीलिमा ने कहा, "जाओ बेटा तुम्हीं जाकर कुँवर को ले आओ। वैसे वह आने में अनमने हो सकते हैं।"

वीरेश्वर चुपचाप चला गया और मैंने नीलिमा से पूछा "यह तुमने क्या किया नीला?

"कुँवर को ज़रूर आना चाहिए। वह उल्टे तुम्हें तकलीफ देगा अपने यहाँ पहुँचने के लिए? और—वह हमारा क्यों उसके साथ बनी रहती है?

मैंने उसके रोष पर ध्यान नहीं दिया कहा "वीरेश्वर के बारे में तुम क्या सोचती हो?

"आगे उससे कठिनाई नहीं होगी। लेकिन कुँवर ने उसके मन में उलझनें पैदा कर दिए हैं और वह पाँच-सात सौ काम करने वालों के ऊपर चलने को अधिकारी बना अनुभव करना चाहता है। यह सत्ता का मोह, तुम पुरुषों से छूट नहीं सकता।

"तुमने उधर से कभी सोचा नहीं? क्योंकि यह मन का भ्रम है। वैसे भी दो दिन की चाँदनी है। सोशलिज़्म तेज़ी से आ रहा है और अर्थ व्यवस्था में कोई सत्ताधिकार का भाव रहने वाला नहीं है। अधिकार

पैसा तो राज्य में। लेकिन धीरे-धीरे वह भी दायित्व बनता चला जायेगा।'

मीरा ने हँसकर कहा "अधिकार से वंचित रख कर ही तो तुमने और उसकी लालसा धीरेश्वर में भर दी है। मुझसे चाहते हो कि मैं उसे बरजूं! घर का मालिक उसे बना दो खर्च सब उसके हाथ से हो और उसकी शादी हो जाय। तो मैं समझती हूँ यह छटपटाहट उसकी दूर हो सकती है।

"यह तो मैं सोचता था। पर करेगा वह क्या?"

"करने को भी बहुत कुछ हो सकता है। तुम्हारे हाथ जब जिम्मेदारियों से भरे हैं तो तुम्हारे कामों की देखभाल ही अपने आप में एक बड़ा काम होगा। तुमने उसे उससे दूर रखा और यह गलती थी।

"मैं समझा नहीं, मीरा तुम क्या कह रही हो।"

"जो समझकर कह रही हूँ। यहाँ आदर्श की तरफ सीधे चलना नहीं हुआ करता, जैसे कभी-कभी तुम चाहते हो। चलना मिल-जुलकर होता है। इसी में से जितनी आदर्श की सिद्धि हो वही वास्तव है। नहीं तो महत्त्वाकांक्षा है। उसमें ही आदमी अकेला बनता है और अपने और दूसरों के लिए समस्याएं पैदा करता है। धीरेश्वर को तुमने स्वतन्त्र और स्वयं समस्या, जबकि वह तुम्हारा और घर का अंग था। तुम समझते गये कि स्वतन्त्रता दे रहे हो वह समझता गया कि वह पराया किया जा रहा है। सार्वजनिक कामों की जिम्मेदारी लेकर अपने बढ़ते जाते हुए मानव सम्पर्कों की व्यवस्था के काम को तुम क्यों नहीं विश्वास के साथ धीरेश्वर पर छोड़ देते हो? उसका यह दोष क्यों बनने देते हो कि वह तुम्हारा पुत्र है। प्राइवेट सेक्रेटरी तुम्हारा कोई वैतनिक ही क्यों हो सकता है धीरेश्वर क्यों नहीं हो सकता?"

"लेकिन अब तो प्राइवेट सेक्रेटरी—

'यही मैं कह रही थी कि तुम जहाँ तक बढ़े हो वहाँ जाकर अपने को घटाने की नहीं सोच सकते। मिनिस्टर कोई क्यों बनता है? सिर्फ

इसलिए कि वह सार्वजनिक स्थिति और दायित्व का निर्वाह कर सकता है और उसको अपने वर्ग का विश्वास प्राप्त होता है। लोगों की आशा अपेक्षा अपने प्रति इस तरह उभार कर फिर वहां से इन्हीं को सोचना एक कायरता है। लेकिन यह तुम्हारी बात हो सकती थी। अब तो वीरेश्वर की बात है। मुझे वीरेश्वर का गुण इसी में दिखाई देता है कि तुम भागी हुई जिम्मेदारियों से बचो नहीं। जिसको तुम नीति-निष्ठ होना कहते हो, उस हिसाब से घर की जिम्मेदारियों को सम्भालो और निबाहो। इस काम में वीरेश्वर न तुम्हारा सहायक ही हो सकता है बल्कि चाहो तो तुम्हारे ऊपर अच्छा प्रहरी भी सिद्ध हो सकता है। सही न्याय बुद्धि उसमें है और शायद तुममें महत्त्वाकांक्षा नहीं होगी कि जिस कारण पथ होकर वह तुम्हारा आलोचक बना है। उसी से सीखकर वह अपनी निज की महत्त्वाकांक्षा में ऊपर की तरफ खिंचा है। ठाकुर के पास वह रहा और इसलिए कि तुम्हारा आदर्शवाद भीतर-भीतर उसे अच्छा भी लगता था। जवानों को सबसे अधिक आकर्षण हमेशा आदर्श का होता है। समय पर उनमें से उसके लिए विसर्जन न किया जा सके तो जवान लोग अपने बड़ों को देखकर फिर अपनी महत्त्वाकांक्षा में बह जाते हैं। देखा नहीं क्या तुमने वीरेश्वर की भावनाओं को? वह तुम्हारे आदर्शवाद को खोखला मानता है। और भीतर से तुम्हें महत्त्वाकांक्षी मानता है। कह सकते हो कि यह सब मानने का अवसर तुमने ही उसे नहीं दिया? उसकी न्याय-बुद्धि को और आदर्श भावना को इससे ठेस लगती है। इसलिए अगर अब उसकी न्याय-बुद्धि को बल दोगे आलोचक के रूप में उसके ही हाथों में अगर अपने को छोड़ दोगे तो देखोगे कि उसकी आलोचना फिर स्वयं उसके ऊपर भी आने लगती है उसके भी लालसा के लिए ही नहीं लगी। आज वह अपने आप का आलोचक है। ऐसा कुछ होना चाहिए कि वह अपना आलोचक बनने लग जाये। तब जगत् की समझ और सहानुभूति देने का उसे अवसर होगा। अभी तो हम सब लोग मन-ही-मन उस पर दया करते हैं, उसका लिहाज करते हैं। आखिर

तुम कभी-कभी इतना घबरा जाते हो कि सचमुच डर ही रहे हो। मैं कहूँगी कि आगे बढ़कर अगर राजकीय जिम्मेदारी कुछ भारी हो तो उसे छोड़ दो और वीरेश्वर को अपने दफ्तर की देख-रेख सौंप दो। दुनिया की परवाह न करो। तुम सोशलिज्म की बात करते थे। उसी ने नेपोटिज्म जैसा शब्द दिया है। परिवार के लोगों को साथ रखने और उन्हें अपने काम-काज में हाथ बंटाने देने में नेपोटिज्म नहीं है बल्कि वह सीधा-सीधा है। सोशलिज्म सच्चा शब्द नहीं है वह इंडिविजुअलिज्म का सिर्फ बचाव है। एक वाद दूसरा विवाद। लेकिन वाद-विवाद सब झूठ है। और असली बात यह है कि अपने सब सम्बन्धों में हमें प्रेम और स्नेह को काम करते रहने देना चाहिए। 'राज' ने तुम्हें उकसा दिया है इसलिये केवल 'नीति' की बातें तुम सोचने लग जाते हो। पर उकताहट झूठी है और केवल नीति कुछ नहीं हो सकती! सुनते हो? वीरेश्वर बहुत सीधा और ईमानदार है। तुम चाहो तो अपने व्यवहार से उसे कुंवर की शरण में फेंक सकते हो। लेकिन कुंवर का प्रभाव उसका भला न करेगा। कुंवर की तरफ वह खिंच रहा है लेकिन अब भी उसके मन में संयम है और कुंवर के लिए श्रद्धा तो बिलकुल नहीं है। तुम्हारे विरुद्ध है, लेकिन तुम्हारे लिये उसमें श्रद्धा भी है, प्रेम भी है।

खासा लेक्चर था। लेकिन सिर में हाथ दिये मैं सुनता रहा था। जगह-जगह उसकी बातें मुझे छू जातीं और छेड़ जाती थीं और मैं नीलिमा को देखता रह जाता था। क्या वीरेश्वर के लिये उसने यही समाधान सोचा है! जाने क्यों मेरे मन में निश्चय था कि कुंवर से उसका भला न होगा लेकिन नीलिमा का सुझाव तो मानो मेरी ही जड़ों को काट देता था।

नीला कहते-कहते जैसे एकाएक अपेक्षा में चुप रह गई थी। मानो उसे स्वयं अनुभव हो आया हो कि वह आगे जा रही है। लेकिन उसकी अपेक्षा को देखकर भी मुझमें से कोई उत्तर नहीं आया और मैं अपने में ही सोचता हुआ सा रह गया। मुझे इस रूप में देखकर नीला असमंजस

में हुई। बोली—"मैं जाने क्या-क्या कहती गई। ख्याल न करना।

मैंने निगाह ऊपर करके नीलिमा को देखा। वह मेरे निकट कभी सबका मुग्ध हो चुकी है। इसलिए उसका मुझ पर अधिकार परिपूर्ण हो सकता है। मैंने कहा 'नीमा! तुमने एकदम ठीक कहा है। लेकिन—।'

तभी फोन की घंटी बजी। नीलिमा ने फोन उठाया तो मेरे बारे में पूछा गया और कहा गया कि फोन उन्हें ही दे दीजिये। पर ये राजश्री ने कहा "ठाकुर साहब ने अभी बताया है कि एक जरूरी बात है फोन पर नहीं कह सकते और आज ही शाम को वह पहुँच रहे हैं। मैंने बहुत पूछना चाहा तो इतना ही कहा कि कुंवर की बात है, खुद आकर बतायेंगे।

मैंने कहा 'राजी तुम्हें क्या लगता है? क्या हो सकता है?'

"ठाकुर की आवाज घबराई-सी थी। कुछ गम्भीर बात मालूम होती है। कुंवर तुम्हें मिले?

"वीरेश्वर मिला था। कुंवर अभी आते होंगे। नीता ने उनको यहीं बुला लिया है। हमारा भी कमरे में उनके साथ होने से आ रही है।

"नीता को देना फोन।

मैंने फोन नीता को दे दिया। उनकी बातचीत से ऐसा मालूम हुआ कि वीरेश्वर को लेकर वे दोनों पहले से ही जैसे कुछ मशवरा कर चुकी हैं। मेरे सुनने में जो आया उससे—नीलिमा ने राजश्री को आश्वासन दिया कि वीरेश्वर के लिए चिन्ता की बात नहीं है।

नीता ने फोन फिर मुझे थमा दिया। राजश्री कह रही थी "हाँ एक बात मैं कहना भूल गई थी। तुम्हारे जाने के थोड़ी देर बाद भानु प्रताप ने फोन किया था। वह जरूरी तौर पर तुमसे मिलना चाहते थे। मैंने टाल दिया कि तुम घर पर हो नहीं। पूछते रहे कहाँ हैं, वहाँ का नम्बर दे दीजिये। मैंने मुनासिब नहीं समझा होटल का नम्बर देना। जरूरी समझो तो सीधे तुम वहीं से बात कर लेना।

मैंने फोन रख दिया और अपने बावजूद जैसे एक गहरे सोच में पड़ गया।

नीलिमा मुझे देखती रही थी। उसने मुझसे कुछ नहीं पूछा। मौन सम्वेदन ही उसका मुझे प्राप्त होता गया और मालूम हुआ कि वह है जो मुझसे यह या वह कराना नहीं चाहेगी। जो करूँगा उसे ही सही सही समझ सकेगी। मैं मन-ही-मन नीलिमा का और उसके इस मौन का कृतज्ञ हुआ कि जो अभी मुखर होकर जाने क्या-क्या सम्बोधन मुझे देती चली गई थी।

इतने में काफी का सामान आ गया और थोड़ी देर बाद वीरेश्वर भी तमारा और कुंवर को साथ लिये आ पहुंचा। वीरेश्वर के पीछे तमारा बेधड़क सी आई और कुंवर सबसे पीछे और धीमे-धीमे आये। उन्होंने कहा "मैंने एक ट्रंक काल बुक किया हुआ है। आपकी आज्ञा थी और वीरेश्वर ने कहा तो हाजिर हो गया हूं। लेकिन क्षमा कीजियेगा अधिक नहीं ठहर सकूंगा।"

नीला ने कहा, "अभी रिसेप्शन से कह दो ट्रंक मिलने पर इसी कमरे में दे देंगे।

"जी नहीं। इस बार तो माफ ही करना होगा। वैसे जब कहिये आ जाऊंगा। बाबूजी, एक मिनिट की तकलीफ दे सकता हूं?

काफी वगैरह तैयार हो निकली थी और तमारा नीलिमा की इसमें मदद कर रही थी। मैंने कहा "पहले काफी तो लो।

"जी एक मिनट।

कुंवर मुझे बराबर के कमरे में ले गये और बोले "आपके क्या कोई दुश्मन लोग हैं?"

"मेरे दुश्मन!

"जरूर होंगे। अखबार में यह खबर जरूर उनकी ही करतूत थी। अब वे मुझे परेशान कर रहे हैं।"

"क्यों क्या बात है?'

"बड़े बिज़निस में असन्तुष्ट लोग हुआ ही करते हैं। लेकिन ज़रूर पीछे उनको कुछ लोगों की शह है। सुना है कोई हड़तालबाज़ी शुरू होने वाली है। मैं आप लोगों को तकलीफ देना नहीं चाहता था। लेकिन अजलि को चिन्ता हो गई है और वो कुछ आपसे इस बारे में मिलने वाली थी। मैंने रोक दिया। अब ट्रक पर जैसा आप कहेंगे, कह दूंगा।

"डिटेल्स मालूम करो। लेकिन मैं क्या कर सकूंगा?

"ऐसी कोई बात नहीं है चिन्ता की। ज़रा इधर-उधर कुछ कहना होगा तो वो आप सम्भाल ही लेंगे। मुझे लगता है अजलि बिना आए मानेगी नहीं। क्या आप उससे बात करेंगे?

"तुम हो ही उसे आने की क्या ज़रूरत है? लेकिन मुझसे अब ज़्यादा आशा नहीं रखनी चाहिए। आओ चलें। कॉफी ठण्डी हो रही होगी।"

मैनेजर कुंवर चले नहीं। काफी समाधान के साथ बोले—

'वीरेश्वर के बारे में आप फ़िक्र करना छोड़ दें। मैंने सरसरी बात कर ली है। पहले सोचता था चार-छह महीने वह मेरे साथ ही रह लेंगे। लेकिन अब सीधे ही काम पर आ सकते हैं। कुर्सी खुद काम सिखा देती है। एकाएक जनरल मैनेजर तो नहीं लेकिन उनके नीचे रखे देता हूं। पेड की बात होनी रहेगी। अभी फ़र्निश्ड मकान के अलावा आठ सौ के करीब तो मिल ही जायगा।

✓"तुम्हारे रहते मुझे वीरेश्वर की क्या चिन्ता है। आओ—

जबर चाहे जाहिर हों मैं इस बात-चीत में शरीक रहने को तैयार नहीं था। और कमरे में आकर मैंने देखा वीरेश्वर अकेला है उमा एक सोफा पर होकर शीशिमा से बात किए जा रही है।

कुंवर ने आगे बढ़कर मेरे लिए भी कप तैयार किया। लेकिन मैं बैठा नहीं कप लेकर खिड़की के पास चला गया और बाहर देखने लगा। वहां दूर एक अजसी शरीर में कुछ बत्ती-सी दिखती थी जिसमें से मकानों और पेड़ों को अलग नहीं किया जा सकता था। बीच बीच में

व्यवधान था और ऊपर आसमान था जहाँ निगाह टिकने को कोई बिन्दु न मिला। मैं उस शून्य में देखता रहा और लगा कि कहीं आधार नहीं है। अनायास हाथ उठाकर कॉफ़ी की घूँट ले लेता और फिर उसी सूने में देखने लग जाता। मुझे भान था कि पीछे कमरा व्यस्त है और वहाँ कुछ-न-कुछ हो रहा है। लेकिन किसी ने मुझसे कुछ नहीं कहा। यहाँ तक कि समारा ने भी मेरी उस एकाग्रता को भंग नहीं किया।

मैं बैठा था तब तक कुँवर ने कहा "अच्छा बाबूजी मुझे इजाजत दीजिये।

मैंने कहा "तो अच्छा—जाओगे ?"

"जी।—तो अंजलि को क्या कहना होगा ? वह बड़ी चिन्तित मालूम होती है।

"कह देना जैसा ठीक समझो।"

"आई तो वह शाम तक आ जायेगी। अच्छा सलाम।"

कुँवर चले गये और मैंने फिर खिड़की से बाहर देखा। वहाँ रिक्त था और कोई निर्देश न था। मैं अन्त में पीछे मुड़ा और समारा ने प्लेट में कुछ सामान रखकर मेरी तरफ बढ़ाया। कहा 'लीजिये और हम लोगों का अस्तित्व एकदम भूल न जाइये। किस सोच में पड़े हैं आप ? मैंने अभी आपसे जिद नहीं की। लेकिन बताइये किस रोज मेरी सिटिंग्ज़ का समय निकालियेगा। एग्जीबीशन सात रोज चलेगी। इतवार से इतवार तक।

"अरे तुम लोगों की एब्सर्ड आर्ट पेंटिंग तो हमसे ऊपर ही रह जाती है। देखो कभी आऊँगा। तुम्हें मालूम है, अंजलि आ रही है ?"

"जी हाँ। अंजलि शाम को पहुँच रही है। कुँवर साहब ने बताया तो होगा।

धीमे से [illegible] था। [illegible]

"तो मालूम है कैसे आ रही है? कुंवर कुछ खास बता नहीं सके।

"कुंवर साहब का ही कुछ काम होगा। मुझे नहीं मालूम। क्यों, घर फोन नहीं आया?

"आया होगा तो मेरे पीछे। मैंने कहा और हाथ में प्लेट लेकर वीरेश्वर के पास आ गया। नीला उसके बराबर बैठी हुई थी। मेरे जाते ही नीला ने कहा, "आप वृथा कहते हैं। वीरेश्वर तो आप लोगों के साथ रहने में खुश है। लेकिन ठाली नहीं उसे काम चाहिये।

क्यों वीरेश्वर अभी कुंवर साहब से पक्का तो नहीं किया? बात यह है तुम्हारी भाभी नीलिमा की कि तुम रहो तो मुझे बड़ा सहारा हो जायगा।

"मैंने इंकार तो नहीं किया। और कभी मां की तकलीफ भी देखता हूं। पर आपकी अच्छी-अच्छी बातों के चिन्तन से मेरे हाथ तो नहीं भर जाते हैं। कुछ आप हाथ में काम दीजिये और सहायता में मैं मदद दिखाई न दूं तो कहियेगा। मुझे कुंवर के पास क्या खुशी है। बहिन का बड़ा भाई होने से बल्कि यह मेरे लिए शर्म की बात है। पर आपने मुझसे कभी काम की बात की ही नहीं।

"तो पक्का रहा वीरेश्वर। नीलिमा ने कहा "यह भी काम सम्भालेंगे और तुम पूरी मदद करोगे। बिना सहारे यह खुद अधूरे से रहते हैं और तब मन न लग और मुक्ति निवृत्ति की बात सोचें तो सोचेंगे ही। पर वीरेश्वर, इस हालत में भी तो तुम्हें घर से रूठना नहीं चाहिए था।

मैंने पूछा 'वीरेश्वर, मंजरि की क्या खबर है?

"मुझे नहीं मालूम।

वह आज आ रही है, यह तुम्हें नहीं मालूम?

अब क्या वह आ रही है?

लेकिन उमापति को मालूम है!

व्यवधान था और ऊपर आसमान था जहाँ निगाह टिकने को कोई बिन्दु न मिला। मैं उस शून्य में देखता रहा और लगा कि कहीं आधार नहीं है। यन्त्रवत् हाथ बढ़ाकर कॉफी की घूंट ले लेता और फिर उसी सूने में देखने लग जाता। मुझे भान था कि पीछे कमरा व्यस्त है और वहाँ कुछ-न-कुछ हो रहा है। लेकिन किसी ने मुझसे कुछ नहीं कहा। यहाँ तक कि समारा ने भी मेरी उस एकाग्रता को भंग नहीं किया।

मैं जैसे जागा तब जब कुंवर ने कहा "अच्छा बाबूजी मुझे इजाजत दीजिये।"

मैंने कहा "तो अच्छा—जाओगे ?

"जी।—तो अंजलि को क्या कहना होगा ? वह बड़ी चिन्तित मालूम होती है।"

"कह देना जैसा ठीक समझो।"

"भाई तो वह शाम तक आ जायेगी। अच्छा प्रणाम।

कुंवर चले गये और मैंने फिर खिड़की से बाहर देखा। वही रिक्त था और कोई निरोध न था। मैं अन्त में पीछे मुड़ा और समारा ने प्लेट में कुछ सामान रखकर मेरी तरफ बढ़ाया। कहा 'लीजिये और हम लोगों का अस्तित्व एकदम भूल न जाइये। किस सोच में पड़े हैं आप ? मैंने अभी आपसे जिद नहीं की। लेकिन बताइये किस रोज मेरी प्रिव्यूज का समय निकालियेगा। एग्जीबीशन सात रोज चलेगी। इतवार से इतवार तक।

"भई तुम लोगों की एब्स्ट्रैक्ट पेंटिंग तो हमसे ऊपर ही रह जाती है। देखो कभी आऊंगा। तुम्हें मालूम है, अंजलि आ रही है ?"

"जी हां। एंजिल शाम को पहुंच रही है। कुंवर साहब ने बताया तो होगा।"

मैंने धीमे से कहा "हां अभी बताया तो था। बच्चे भी आ रहे हैं ?"

"जी नहीं। मैं समझती हूं अकेली ही आयगी।"

"तो मालूम है कैसे आ रही है ?" कुंवर कुछ बात बता नहीं सके।

"कुंवर साहब का ही कुछ काम होगा। मुझे नहीं मालूम। क्यों, पर फोन नहीं आया ?'

"आया होगा, तो मेरे पीछे।" मैंने कहा और हाथ में प्लेट लेकर वीरेश्वर के पास आ गया। मीना उसके बराबर बैठी हुई थी। मेरे आते ही मीना ने कहा 'आप वृथा कहते हैं। वीरेश्वर तो आप लोगों के साथ रहने में खुश है। लेकिन ठाली नहीं उसे काम चाहिये।

"क्यों वीरेश्वर, अभी कुंवर साहब से पक्का तो नहीं किया ? बात सच है तुम्हारी भाभी गीतिमा की कि तुम रहो तो मुझे बड़ा सहारा हो जायगा।

"मैंने इकरार तो नहीं किया। और अभी मां की तकलीफ भी देखता हूं। पर आपकी अच्छी-अच्छी बातों के खिंचाव से मेरे हाथ तो नहीं भर जाते हैं। कुछ आप हाथ में काम लीजिये और सहायता में मैं उज्र दिखाई न दूं तो कहियेगा। मुझे कुंवर के पास क्या खुशी है। बहिन का बड़ा भाई होने से बल्कि वह मेरे लिए धर्म की बात है। पर आपने मुझसे कभी काम की बात की ही नहीं।

"तो पक्का रहा वीरेश्वर।" गीतिमा ने कहा "यह भी काम सम्भालोगे और तुम पूरी मदद करोगे। बिना सहारे हम गुड़-अधूरे से रहते हैं और तब मन न लगे और मुक्ति निवृत्ति की बात सोचें तो सोचेंगे ही। पर वीरेश्वर, इस हालत में भी तो तुम्हें घर से रूठना नहीं चाहिए था।

मैंने पूछा "वीरेश्वर, अंजलि की क्या खबर है ?

"मुझे नहीं मालूम।

"वह आज आ रही है, यह तुम्हें नहीं मालूम ?

"अब कहां वह आ रही है ?

मालिक हमारा को मालूम है।

यह कैसी बात है। आप कह रहे हैं कि मंजलि आ रही है और तमारा को मालूम है। पर मुझे कुछ पता नहीं है। कहने के साथ बीरेश्वर को क्रोध हो आया और उसने तमारा को जो बाहर मेरी जगह बाहर देखने लगी थी और वहीं खड़ी रह गई थी और से नाम लेकर पुकारा। पूछा "बाबूजी कहते हैं, मंजली शाम को आ रही है और तुम्हें मालूम था? मुझे क्यों नहीं बताया गया?

'कुंवर साहब ने नहीं बताया?

'नहीं बताया तो तुम कह सकती थी। यह ठीक नहीं है तमारा और कंवर से कह देना मैं खिलौना नहीं बनना चाहता।

तमारा ने कुर्सी पास को खींची। ऐसा लगा कि बातें-बातें बीरेश्वर के हम लोग न होते तो वह बीरेश्वर का हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर अच्छी तरह समझ सकती थी। समझा देती कि इसमें उन दोनों में से किसी का दोष नहीं है। अभी सामने बैठकर उसने कहा "डियर बीरेश्वर, मुझे ख्याल था तुम्हें मालूम है और कुंवर साहब को सदा होगा मैंने बता दिया है! चलोगे न एयर पोर्ट मंजलि को लेने हम लोगों के साथ?"

"बाबूजी आप जायेंगे?

"तुम्हारी माँ को शायद सीधा फोन आया हो। तब जरूर जायेंगे।'

तो मैं तमारा बाबूजी के साथ आ जाऊंगा।

बाबूजी को कष्ट करने की क्या जरूरत है। और वह ठहर तो रही नहीं है उनके साथ। बाबूजी को बुरा लगेगा अगर लेने गये और मंजलि घर न ठहर सकी। अच्छा बाबूजी हम चले। नमस्कार भौजिमा जी। आपको ख्याल रहेगा न इस काम का। भूलिएगा नहीं। आओ बीरेश्वर चलें।

"तुम जाओ तमारा मैं यहां ठहरूंगा। न आया तो फिकर न करना। समझ लेना कि घर चला गया हूं।

"घर जाओगे? मंजलि तो तुम्हारे खातिर यहां ठहर रही है।

जाओ चलें, एलिस को लेकर यहाँ आएँगे और उसके बाद चाहो तो उससे पूछकर घर चले जाना। क्यों ठीक है न बाबूजी?

"हाँ बेटा, हो आना एअर पोर्ट और बहिन को लते आना। मेरा अभी निश्चय नहीं है। साढ़े सात बजे आ जाता है प्लेन। कह देना आने पर तुम दोनों का इन्तजार रहेगा। कुँवर को काम हो तो अकेले चले ही लेते आना।

"तो चलें वीरेश्वर। अच्छा बाबूजी। बीरिओ, नीलिमा देवी बाई बाई।"

वीरेश्वर ने कुछ नहीं कहा और हम दोनों को सिर झुकाकर वह उमारा के साथ बाहर चला गया।

मैंने गहरी साँस ली। जैसे भारी बोझ सिर से कुछ हटा। नीलिमा पास आई, बिना बोले उसने मेरे हाथ पर हाथ रखा और धीरे-धीरे उसे सहलाती रही। दोनों के पास एक-दूसरे से पूछने को बहुत कुछ था लेकिन जैसे कुछ पूछने की आवश्यकता न थी। उमारा ने क्या उसे बाद रखने को कहा था? कहा होगा कुछ। मुझे कुंवर ने एकान्त में क्या कहा था? वो भी रहा होगा कुछ। बाहर होता हुआ सब कुछ अन्दर एक दबाव या उभार छोड़ जाता है। बस वही बच रहता है, शेष तो आता और बीत जाता है। यह बाहरी घटनाओं से प्राप्त हुई आंतरिक निष्पत्ति सहानुभूति है, बातों न अपने आप ही गहरी सम्वेदना में उपराम हो जाती है, शायद पूछने बताने की आवश्यकता नहीं रहती।

ऐसे हम देर तक बैठे रहे। नीलिमा की हथेली मेरे हाथ को हौले हौले सहलाती रही और मैं सोचता रहा कि नीलिमा कोई नहीं है, मैं उसका कोई नहीं हूँ। लेकिन यह हाथ का स्पर्श जाने एक-दूसरे को कितनी सान्त्वना कितना आश्वासन पहुँचा रहा है! बाहर का होता जाता हुआ अप्रत्याशित या प्रत्याशित सब कुछ अन्त में वैसे सपना ही हो जाता है मगर मन में छोड़ जाता है कुछ वह जो मनोवेदना को घुमाता और स्वयं उसमें घुलता रहता है।

मैंने अन्त में अपनी ओर से कहा "मीता कुंवर चक्कर में आ सकता है। कह रहा था इन्क्वायरी जारी होने वाली है।

"होने दो। तुम क्यों चिन्तित होते हो ?

असलियत सुनकर घबरा गई मालूम होती है। लेकिन मैं क्या कर सकता हूं ?"

तुम कुछ नहीं कर सकते हो। जानते हुए भी फिर खिन्न क्यों होते हो। लेकिन राज भाभी कह रही थीं कि किन्हीं भानुप्रताप का फोन आया था। वह क्या बात थी ?

"वही पुराना सिलसिला होगा और क्या ?

'समझते हो तुम्हें बी० पी० से मिलना होगा ?

"हो सकता है उन्होंने याद किया हो।

"तुम मुझे वचन दे सकते हो।

"वह वचन ?—नहीं।"

"सहाय मेरा स्वार्थ नहीं है। तुम्हारा स्वार्थ नहीं है। क्या तुम एक बार नितान्त निस्वार्थ होकर नहीं सोच सकते ? सोचोगे तो—।

'मीता इस बारे में मुझसे न कहो। जितने शब्द बाहर से आते हैं सब मुझसे प्रतिरोध पैदा करते हैं। इससे नहीं चाहता कि एक भी शब्द कर्त्तव्य-धर्म के बारे में बाहर से मुझ तक आए। वही मुझे सहज नहीं रहने देता और प्रतिरोध जगाता है। देखो मीता कभी तुमने मुझे कुछ नहीं कहा है। जैसा हूं स्वीकार किया है। यही बस है जो तुमसे मुझे मिला है। दूसरे सुधार चाह सकते हैं मुझमें संशोधन चाह सकते हैं, मुझे अच्छा देखना चाह सकते हैं। पर प्रेम चाहता नहीं है बस मान लेता है। मुझे खुद नहीं मालूम। मेरे बारे में जो होगा उसे तुम क्या वैसे ही नहीं स्वीकार कर सकोगी। मीमिमा तुम हो कि यहां मैं अपने पर कोई आवरण नहीं रख सकता न आवरण ले सकता हूं। आदर्श का न सिद्धान्त का, न धर्म का। इसलिए मेरी निपट निजता में से आने दो जो आये। अच्छा बुरा स्वार्थ-निस्वार्थ जो भी हो वही ठीक होगा। वही मुझे और तुम्हें

मंजूर होना चाहिए। कद् तब जिसमें न मेरा हो, न तुम्हारा हो, बस एक ऐसी अनिवार्यता हो जिसमें मैं-तुम कुछ रहें ही नहीं।

नीला सुनती रही। उसने फिर मेरे हाथ को अपनी हथेली में लिया और उठाकर धीमे से चूम लिया। कहा "मैं तुम्हारा अन्तःकरण बनना चाहती थी। पर समझती हूं यह झूठ था। प्रेम का भी यह अर्थ नहीं है। उसके अन्तरंग में बस वह है जो एक है सब है, और इसीलिए परम है और मान्य है।"

आगे मुझे कुछ नहीं कहना है। मुक्तिबोध की कहानी यहां ही खत्म हो जाती तो अच्छा था। लेकिन ग्रंथ का अंजाम खत्म होने के लिए नहीं होता है। परंपरा विस्तृत होती चलती ही जाती है कि अब अंत में मुक्ति में पर्यवसान पाये। अर्थात मुक्ति और सृष्टि परस्पर समन्वित तत्त्व है। शायद सृष्टि में से मुक्ति है। चाहे तो देखें कि सृष्टि सदा बन्धनों की ही सृष्टि हुआ करती है।

दोनों एक प्लेन से ही आये होंगे ठाकुर और अंजलि। ठाकुर सीधे मेरे यहां आये और बोले "सहाय तुम्हें कुंवर के साथ सम्भलकर चलना है। वह खतरे में है। तुम्हारा नाम मिट्टी में मिल जायेगा अगर जरा भी चूक का कदम रखोगे।"

मेरे मन पर चेतावनी का कुछ असर नहीं हुआ। मैंने कहा "कुंवर मेरा जमाई है। अंजलि मेरी बेटी है। सम्बन्ध तोड़ कैसे दिये जा सकते हैं।"

"लेकिन तुम घर के नहीं हो देश के हो सहाय। और कुंवर की करतूतें गहरी मालूम होती हैं।"

"होंगी और ठाकुर मैं तुम्हारा आभार मानता हूं। लेकिन अपनों की जरूरत संकट और कष्ट में ही तो होती है।"

"इन्क्वायरी शुरू हो गई है सहाय और कुंवर गिरफ्तार तक हो सकते हैं। देखना ऐसा न हो कि तुम्हारे पर गिरफ्तारी हो।"

"होगी तो होने दो ठाकुर।"

"साहब, तुम्हें यह क्या हो गया है ? भाभी को इन्हें समझाओ न।"

"ठाकुर, यह ठीक कहते हैं। बेटी और जमाई को छोड़ा नहीं जा सकता है।"

"छोड़ने को नहीं कह रहा हूं भाभी जी सिर्फ यह पांच-सात दिन बचा जाइये।

'अच्छी बात है" मैंने कहा 'तुम अब आराम करो।"

इससे पहले भानुप्रताप से भी बात करने का अवसर न आ सका। फोन मिलाने पर भानुप्रताप ने कहा "दिन भर बड़ी कोशिश करता रहा हूं। तुम्हारे होटल तक भटका। ले-देकर अब नमस्कार हुए हो। डी० पी० याद कर रहे थे अर्जेण्ट। किसी वक्त भी वहां जाया जा सकता है। अभी गाड़ी लेकर आऊं ?"

मैंने कहा "सुना है, मेरे जमाई के खिलाफ कार्रवाई शुरू होने वाली है। गिरफ्तारी तक का खतरा है। क्या मुनासिब यह न होगा कि बातचीत इस तूफान के साफ होने तक टाल रक्खी जाये ?

"अरे भई, तो तुम्हीं यह सब उनसे कह-सुन न लेना।'

'अच्छी बात है। फौरन आ जाओ। अभी चला चलूंगा।'

भानुप्रताप बाहर ही छूट रहे और डी० पी० ने वही सवाल सामने रक्खा। मैंने अपने पहले वाला सुझाव बता दिया। तिस पर अपने कुंवर साहब के खतरे की बात भी बता दी। उसके बाद अनुनयपूर्वक माफी मांगी।

डी० पी० हंसकर रह गये। बताया कि उन्हें पहले ही मालूम था। इसीलिए खास तौर से मुझे इस वक्त बुलाया था। यह परीक्षा ही थी और अब कहीं गुंजाइश नहीं है, मुझे मानना पड़ेगा।

मैंने बहुतेरा कहा लेकिन डी० पी० ने बताया कि अगर मैं यह नहीं चाहता हूं कि डी० पी० खुद इस्तीफा दें तो मुझे पद स्वीकार ही कर लेना है। उन्होंने यह भी कहा कि मुझे जानना चाहिए कि ठीक

मान के लिए यह प्रतिष्ठा का—नहीं, बल्कि वोटों का प्रश्न है। और स्वार्थ नहीं उत्सर्ग की ही चुनौती है, कि जिसकी स्वीकारता के उत्तर से मैं बच नहीं सकता हूं।

साढ़े आठ बजे तक मैं घर पर लौट कर आ गया। वहां अंजलि मौजूद थी। मेरे पहुंचते ही वह मेरे गले से लग कर रोती हुई पुकार उठी 'ओ मेरे बाबूजी!"

लेकिन मैं उसे सिर या पीठ पर थपथपा भी नहीं सका। मेरा चेहरा गम्भीर था। और मैं जानता था कि मैं अंजलि को शब्दों तक में कोई आश्वासन नहीं दे सकता हूं।

राजश्री विस्मय से मुझे देखती रही। बोली "ऐसे भी कठोर क्यों हुए जा रहे हो। आखिर तो बेटी है। रो रही है। प्यार की एक थपकी नहीं दे सकते मगर ढाढ़स का एक शब्द तुम्हारे पास नहीं है!"

पर सचमुच मेरे पास न प्यार था, न ढाढ़स का एक शब्द था। मैंने गले में पड़ी अंजलि की बांहों को अपने से अलग किया और कहा "अंजलि, तुम मेरी बेटी हो। लेकिन कुंवर को गलत पर गलत रास्ते पर जाने से रोक नहीं सकती हो। बल्कि शायद बढ़ावा देती रही हो। पैसा आराम जो देता है, क्यों? और अब बाप के पास आती हो!" समझ लो बाप मर गया। वह कुछ नहीं कर सकता है।

अंजलि बोली "बाबूजी मेरा दोष नहीं है। दोष उनका भी नहीं है। दुश्मन आपके हैं जो हमें फांसना चाहते हैं, और इस तरह बदनामी आपकी चाहते हैं।

"बको मत अंजलि!" मैंने क्रोध की कर्कशता में कहा "कुंवर ने जो पट्टी पढ़ाई, पढ़ गईं। शर्म नहीं आती तुम्हें? सुनो मैं कुछ नहीं कर सकता हूं। और भुगतना होगा कर्म उसका जो तुम लोगों ने किया है।"

"बाबूजी बात संगीन हो गई है। गिरफ्तारी तक हो सकती है।"

"मैं कुछ नहीं जानता। और मैंने ताकीद से कहा "अभी इधर

जाओ।"

अंजलि वहां अकेली खड़ी रह गई। जैसे जान निकल गई हो। और मैं न्याय-सा मानता हुआ राज के साथ उस उपस्थिति से बाहर हो गया।

कमरे में आने पर राजश्री बोली "यह सब क्या हो गया है तुम्हें? ऐसे तो तुम कभी न थे।

"मैं मिनिस्टर हो गया हूं।

अचरज में राज बोली "सच?

उसका मुंह खुला रह गया और उसने मुझे देखा।

मेरे माथे पर तेवर थे और उसका चेहरा अधिकार के बाद अभी-अभी विश्वास में खिलता आ रहा था।

फिर वह चुपचाप अपनी बेटी के पास चली गई।

और मैं कमरे में अकेला रह गया कि अपने तेवरों को आप ही सम्भालूं और जो भाग्य हो उसे आप ही भोगूं।